Hridayarogka Buniyadi Upchar

A Program of low-fat Vegetarian diet, light exercise, progressive deep relaxation and group discussion by Dr Ramesh I Kapadia

कीमत रु. ६०/-

कम चरबीवाला निरामिष आहार, सुगम व्यायाम, शवासन, ध्यान और समूहसवाद का कार्यक्रम। डॉ. डीन ओर्निश के इस प्रकार के कार्यक्रम को अमरिका की सुप्रसिद्ध वीमा कपनी ने कॉरोनरी हृदयरोग की चिकित्सा के लिये मान्य किया है।

प्रथम आवृत्ति, प्रत · २०००

ISBN 81-7229-177-9

मुद्रक और प्रकाशक
जितेन्द्र ठाकोरभाई देसाई
नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद-३८० ०१४

क्रियाशील वनाता है। समय की अत्यावश्यकता विलीन होती हे और उसके साथ आर्थ्राईटीस, हाईपर एसिडिटी, कोलाईटीस और त्वचा के दर्द जैसी अन्य चिरकालीन वीमारी मे भी सुधार होता है। यह कार्यक्रम इतना सरल और विन खर्चालु होने पर भी व्यक्ति को समग्रतया स्वस्थता प्रदान करता है। यह दावा किसी को अतिशयोक्तिपूर्ण लगे, लेकिन उसका अनुभव करने से यह प्रतीति हो सकती है।

यह पुस्तक इस कार्यक्रम की एक मात्र झलक प्रदान करता है। इस कार्यक्रम मे हिस्सा लेने से, सिर्फ एकाध वार अनुभव लेने से और लेखक का मार्गदर्शन लेने से अश्चर्यकारक परिणाम आये है।

आज से ठीक एक साल पर, दो अक्तूवर १९९२ के दिन, युनिवर्सल हीलिंग ट्रस्टने अपना एक साल पूरा किया। तव इस प्रोग्राम की माहिती अग्रेजी में देती हुई 'प्रायमर ऑफ युनिवर्सल हीलिंग' पुस्तक प्रसिद्ध हुई थी। इसके वाद 'आहार का उपभोग तो भी हृदय निरोग' 'और हृदय रोग की समस्या एक नयी दिशा' गुजराती मे प्रसिद्ध हुई। अव भारत के विशाल जनसमूह को लक्ष्य मे रखकर इन तीनो पुस्तकों का हिंदी में सकलन कर प्रकाशित करते हुए वहुत आनद अनुभव करते है।

पर जोर देने का अभिगम आज सार्वत्रिक दिखाई देता है। ई. स १९८८ मे नयी दिल्ली मे तबीबी विद्यार्थियो के एक बडे समूह के सामने मैंने व्याख्यान दिया। इस के बाद उन विद्यार्थियो मे से तीन विद्यार्थियो ने मुझे ढूँढ निकाला और मुझसे कहा, "डॉ डोस्सी आप सचमुच मानते है कि शरीर पर मन असर कर सके? प्रभाव डाल सके?" इस सकल्पना के बारे में भारत मे ही शका उठायी जाय वह बहुत ही विचित्र है ऐसा मुझे लगा। लेकिन जिनको अभी स्वय का आध्यात्मिक तादात्म्य प्राप्त हुआ नही वैसे युवान चिकित्सकों को भौतिक विज्ञान ही अभिभूत कर सके इस में आश्चर्य नही है।

जो भी हो, मैं दृढ रूपसे मानता हूँ कि आप एक ऐसे सही रास्ते पर है कि जो रास्ता आज दिन तक मानवजाति ने जाने हुए तबीबी चिकित्सा के किसी भी स्वरूप की अपेक्षा अधिक यशस्कर स्वरूप तरफ खीच ले जायेगा। पूर्व के तेजस्वी तारे के रूप मे जिसकी जगमगाहट दिनप्रतिदिन बढती रहेगी ऐसे एक तारे के रूप मे तुम्हारे कार्यक्रम को मै देख रहा हूँ। तुम्हारा रेडियो पर का वार्तालाप अत्यत माहितीसभर, रसप्रद और प्रभावशाली है।

साप्रत चिकित्सा क्षेत्र मे रोग हमेशा केवल शारीरिक ही होता है उस मान्यता की पुनर्विचरणा हो रही है। परपरागत रोग कि जो दीर्घकाल दरम्यान शारीरिक रोग गिने जाते रहे, उस पर भी मानवचेतना का प्रभाव हम देखते है। मिसाल के तौर पर मधुप्रमेह जैसे परपरागत रोगो के बाह्य लक्षण पर हमारे विचार और भावनाओ का असर पडता है।

करीब एक शतक तक हृदयरोग को भी अन्य वश-परपरागत प्रश्नों की तरह हम सिर्फ एक शारीरिक रोग ही मानते आये है। हमने तो दूसरे गौण भयस्थानो के साथ साथ कॉलेस्टरॉल की वृद्धि, रक्त का ऊँचा दबाव, धूम्रपान, मधु प्रमेह जैसे जोखिमी लक्षणो को खोज कर उसे दूर करने मे ही ध्यान केन्द्रित किया है। कॉरोनरी हृदय रोग के इलाज मे हमने सिर्फ भौतिक चिकित्सा पर ही आधार रखा है - बायपास सर्जरी और एन्जियोप्लास्टी जैसी शस्त्रक्रियाएँ, औषधियाँ, आहार-नियमन और व्यायाम।

इन अभिगमों का खास मूल्य है। फिर भी हम जानते है कि वह अपूर्ण, अधिकतर बिन-असरकारक खर्चालु और कभी कभी जोखिमी भी है। जब कि

को मद की जा सकती है। यह प्राथमिक रोगनिवारण है। वदकिस्मती मे ज्यादातर लोग हृदयरोग के हमले के वाद ही खुराक के वारे में जाग्रत वनते है। दर्द होने के वाद की सावधानी सेकडरी, यानी कि मर्ज वढता रोकने और उसे पीछे हटाने का उपाय कहा जा सके। इस रोग के होने के वाद के उपाय शायद प्राथमिक निवारण जितने असरकारक न वने। फिर भी इस रोग की तिमारदारी मे पथ्य आहार की जागृति, मेडिकल या सर्जिकल ट्रीटमेन्ट से होने वाले लवे अरसे के फायदे मे जरूर सहायक होते है। मैंने डॉ कापडिया की पुस्तक रसपूर्वक पढी है। इस मे हमारी खुराक के वारे मे और उसके जो तत्त्व धमनियो के लिए हानिकर है उनकी व्योरे से छानवीन की है।

इस पुस्तक मे कॉरोनरी हृदयरोग के प्राथमिक निवारण के लिए और जिस को रोग हुआ हो उसे आगे वढता रोकने के लिए और पीछे हटाने के वास्ते भी सक्षेप मे मार्गदर्शन दिया है।

सालों से कॉरोनरी हृदयरोग की सर्जिकल सेवा टहल वहुत ही कारगत है और नि शक रूपसे मानता हूँ कि इस रोग की चिकित्सा मे एन्जियोप्लास्टी और वाइपास सर्जरी का स्थान है लेकिन इस रोग को रोकने के उपाय ही, जो इस पुस्तक में दर्शाये है, किसी भी चिकित्सा या सर्जिकल की अपेक्षा अधिक श्रेयस्कर सिद्ध होगी ऐसी मेरी श्रद्धा है।

मद्रास, डॉ एम आर गिरिनाथ

एम एस., एम सीएच , एफ आर

(एपोलो होस्पिटल, मद्रास के हृदयरोग के मुख्य सर्जन)

०

मन शरीर का सचालन करता है। और इन दोनों के वीच का सवध ऐसा अविच्छिन्न होता है कि एक से दूसरे को अलग करना मुश्किल है। पक्षाघात तथा हृदयरोग के हमले का सवसे वडा कारण क्रोध को माना जाता है। हृदय की धडकन वढने-घटने की क्षमता वालकों मे सर्व सामान्य है। जैसे जैसे उमर वढती जाती है वैसे वैसे क्रमश हृदय-स्पदन की कमी-वेशी की क्षमता कम

अलविदा...!

सिकुड गई धमनियॉ,
अलविदा।
सिकुड गई धमनियॉ,
तुम्हे पुन· पुन· अलविदा।
अब तुम्हे फलने - फूलने के लिए
कुछ नही है,
मॉस नही है,
मेद के पिड नही है,
निकोटीन नही है,
मदिरा नही है,
प्रेम तुम्हे चुनौती देता है,
मैत्रीभाव तुम्हे आह्वान देता है।
ताजा हवा मे चलना, योग और ध्यान,
तुम्हे चुनौती देता है।
सिकुड गई धमनियॉ,
तुमको पुनः पुन· अलविदा,
अब तुम्हे,
फलने-फूलने के लिए
कुछ नही है।

मे लिपटा हुआ था। भौतिकवाद तथा यत्रवाद को विश्व मे उसने आधिपत्य भोगता हुआ देखा। वाह्यप्रकृति के रहस्यो की खोज से भौतिक विज्ञान ने प्रस्थान किया। लेकिन इस खोज ने अत मे उस विज्ञान कि जो गहनतम रहस्य है वह - मानव मन और चेतना का रहस्य - सामने आया। सापेक्षता और क्वोन्टम भौतिकशास्त्र की क्रातिकारी शोध होने से १३वीं शताब्दी के अत मे पूर्व के प्रशिष्ट भौतिकशास्त्र के जड ढॉचे का विघटन अनिवार्य वना। एडींगटन (Eddington) जीन्स (Jeans) I मेक्स प्लेंक (Max Plank) आइनस्टीन (Einstein) श्रोडिन्जर (Shrodingar) नील वोहर (Neil Bohr), हिसेन्वर्ग (Heisenberg) और २०वी शती के अन्य अन्य भौतिकशास्त्रीओ ने प्रतिपादन किया हे कि अर्वाचीन विज्ञानिक अवलोकन विश्व के मूलभूत ऐक्य को प्रकट करते हैं। आणविक स्तर पर वह स्पष्ट होता है। और जैसे जैसे हम द्रव्य के ठेठ अणु के भी नीचे के उपस्तरो की गहराई मे उतरते जाते है वैसे वैसे वह ऐक्य ओर भी अधिक व्यक्त होता जाना है। सभी पदार्थों और घटनाओ की एकता अर्वाचीन भौतिकशास्त्र के तमाम अवलोकनो का तथा पूर्व के दार्शनिक निरीक्षको का लगातार विपय वन रहे है। डॉ काप्रा (Dr Kapra) उनके ग्रथ 'ध ताओ ऑफ फिझिक्स' (The Tao of Physics) मे आकर्षक ढग से प्रकट करते है कि दुनिया विपयक पौर्वात्य दृष्टि के मूलभूत तत्त्व अर्वाचीन भौतिकशास्त्र मे से नीकलती दुनिया विषयक दृष्टि के भी मूलभूत तत्त्व हैं। पौर्वात्य विचारधारा तथा विशेष व्यापक दृष्टि से अगम्यवादी विचारधारा समकालीन विज्ञान के सिद्धातो को सुसगत ओर प्रस्तुत दार्शनिक पृष्ठ भूमिका की आवश्यकता पूर्ण करता है। "आणविक घटना के अवलोकन विषयक चेतनाका प्रश्न अर्वाचीन भौतिकशास्त्र मे उपस्थित हुआ है। क्वोन्टम सिद्धात से वह हुआ है कि, आणविक घटनाओ को ऐसी प्रक्रियाओ की शृखला की कडी समझी जा सके, जिसका छोर मानव निरीक्षक की चेतना मे रहा हुआ है। युजेन विग्नर (Eugene Wigner) के शब्दो मे "चेतना का सदर्भ वताये विना क्वोन्टम सिद्धातों को सपूर्ण सुसगत रीत से प्रतिपादित करने का शक्य नही था" इस दृष्टि से देखने पर विज्ञान और धर्म के वीच, भौतिक और अध्यात्म विज्ञान के वीच कोई सघर्ष नही है। सत्य की खोज करने का, मानव को शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक रीति से विकसित होने

के अलावा मनुष्य की जीवन शैली मे आमूल परिवर्तन लाने से रोग की मात्रा मे मूलभूत परिवर्तन होता है। उपरात, जीवन प्रणाली मे परिवर्तन लाने का काम जो पहले कठिन माना जाता था वह अब 'ध्यान' और 'शवासन' से सरल वनता है यह भी सिद्ध हुआ है। यह एक मामूली घटना नहीं है। इस रोग की चिकित्सा मे यह सीमाचिह्नरूप सशोधन है। डॉ. डीन ओर्निश के अभ्यास में यह भी ज्ञात हुआ है कि वैरवृत्ति, स्वार्थवृत्ति और टीकात्मक वृत्ति ये कॉरोनरी धमनियों के लिए जहर समान है। भौतिक सुख सुविधा के लिए अधी दौड-धूप और गलाकाट स्पर्धा आज के युवको मे निरालापन की भावना (Isolation) पैदा करती है। यह भावना उपर्युक्त तीन जहर को पनाह देती है। इस प्रकार अलगाव तथापि कौटुम्बिक और व्यावसायिक तनाव ये युवानी मे होते कॉरोनरी हृदयरोग के मुख्य कारण है ऐसा समझा जाता है। जिन लोगो को हृदयरोग का वशपरपरागत रुख हो उन्हें ऐसे स्वभाव के कारण हृदयरोग होने की शक्यता अनेकगुना वढ जाती है। इस किताव मे ये कारण किस प्रकार हृदयरोग को निमत्रित करते है वह, और इन कारणो का असर किस प्रकार मद किया जाय, इस वारे मे मार्गदर्शन किया गया है।

—डॉ रमेश आई कापडिया

२ अक्तूबर, १९९६

३६, जैन सोसायटी

एलिसब्रिज, अहमदावाद-३८० ००६

सूरिशेखरेण भगवता

श्रीसिद्धसेनदिवाकरेण विरचिता

द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिकाः ।

तत्र

प्राप्ता एकविंशतिः द्वात्रिंशिकाः ।

आचार्यप्रवरश्रीमद्विजयलावण्यसूरिणा

रचिताः किरणावलीविवृतिविभूषिताः ।

संपादकः

श्रीमत्तपागच्छाधिपति-शासनसम्राट्-सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-

श्रीविजयनेमिसूरीश्वरपट्टालङ्कार-व्याकरणवाचस्पति-

शास्त्रविशारद-कविरत्नश्रीविजयलावण्यसूरि-

पट्टालङ्कार-श्रीमद्विजयदक्षसूरिपट्टालङ्कारः

श्रीविजयसुशीलसूरिः



प्रकाशक

श्रीविजयलावण्यसूरीश्वरज्ञानमन्दिर

बोटाद (सौराष्ट्र)

और इसके लिये एन्जियोग्राफी करना आवश्यक हो जाता था।

लेकिन पिछले २५ सालो के अनुभव के बाद आज कई विशेषज्ञ इस बारे मे कुछ अलग ही सोचने लगे है। परपरागत खयाल से अगर हम चलते है, तो बहुत सारे दर्दियो को निरर्थक जाँच से गुजरना पडता है। क्योंकि संख्या के हिसाब से देखा जाये, तो बहुत ही कम प्रतिशत दर्दियो के लिये ऐसी जॉच-पडताल निर्णायक रूपसे जरूरी होती है।

अगर हम सारे दर्दियों को बिना सोचे ऐसी जॉच के लिये बाध्य करते है, तो पाया जाता है कि अधिकाश दर्दियो की धमनियाँ इतनी ज्यादा खराब नही होती है कि उनके ऑपरेशन या एन्जियोप्लास्टी करने की सलाह दी जा सके। दूसरी ओर जिनकी धमनियाँ ज्यादा ख़राब होते हुए भी, जिनको रोज़मर्रा के काम मे कोई परेशानी नही होती है, तो उनके लिये ऐसी अवस्था मे भी एन्जियोप्लास्टी या बाय-पास निरर्थक है। मगर दोनों प्रकार के रोगी जब जाँच के बाद अपनी धमनियो मे रोग के लक्षण पाते है, तो निश्चित रूपसे बडे चिंतित हो जाते हैं। उनके डॉक्टर भी चिता मे पड जाते है। फलस्वरूप रोगी के मन मे भय का सचार होता है। भय की वजह से ये धमनियॉ और भी सिकुड जाती हैं। हृदयशूल मे वृद्धि होती है। फिर डॉक्टर और दर्दी की चिंता बढती है, भय बढता है। ऐसे विषचक्र के चलने से एन्जियोप्लास्टी या बायपास के बारे में सोचना जरूरी हो जाता है। इसलिये आजकल कई विशेषज्ञों को ऐसा महसूस होने लगा है कि एन्जियोग्राफी तभी करवाई जाये, जब दर्दी अपने रोज़मर्रा के कामों मे परेशानी का अनुभव करने लगे।

कॉरोनरी हृदयरोग का कोई एक निश्चित कारण आजतक सामने नही आया है। दूसरे, इस रोग में यकायक मृत्यु का भय भी रहता है। इन दोनो पहलुओं को देखते हुए, इस रोग के इलाज के बारे मे कोई भी निश्चित नीति-नियम बनाना मुश्किल है।

दूसरा प्रश्न यह भी है कि ट्रेडमील कब करवाई जाये। जिन रोगियों को अपनी रोज़मर्रा की जिदगी में कोई असुविधा नही है और जिन का कार्डियोग्राम ठीक है, ऐसे रोगियों की ट्रेडमील टेस्ट करना ज़रूरी है या नही? और करने के बाद अगर थोडासा पोझेटीव परिणाम मिले तो आगे क्या किया जाय?



हरएक चीज का सदुपयोग और दुरुपयोग हो सकता है। यह नियम हमारे शरीर को भी लागू होता है। शरीर का उपयोग स्वार्थ के लिए, स्वेच्छाचार के लिए, दूसरो को नुकसान पहुचाने के लिए किया जाय, तो वह उस का दुरुपयोग होगा। किन्तु यदि उसी शरीर का उपयोग सारे जगत की सेवा के लिए किया जाय और इस हेतु से सयम का पालन किया जाय, तो वह उस का सदुपयोग होगा। आत्मा परमात्मा का अश है। उस आत्मा को पहचानने के लिए अगर हम इस शरीर का उपयोग करते है, तो शरीर आत्मा के रहने का मन्दिर बन जाता है।

—महात्मा गाधी

३०-८-'४२

('आरोग्यकी कुजी' मे से साभार)

प्रथम अभ्यास से प्रारभ करके इस रोग का रहस्य खोलने के लिए अनेक सशोधनात्मक प्रयोजनाएँ हाथ मे ली गई है। इस रोग को रोकने मे चरबीरहित आहार से थोडा फायदा मालूम पडा था। चलना, धीमी दौड आदि व्यायाम भी सहायक सिद्ध हुए है। मानसिक शिथिलीकरण प्रविद्याओ तथा तमाकू और शराब के त्याग से होता लाभान्वित असर सिद्ध करने के लिए अमुक प्रयोजनाएँ हाथ मे ली गई। लेकिन डॉ. डीन ओर्निश का यह कार्यक्रम अनेक रीति से बेजोड था। कार्यक्रम की समग्रता से मै प्रभावित हुआ। पथ्याहार (diet) कि जो कार्यक्रम का प्रथम पक्ष है वह सब पूर्ववर्ती अभ्यासो से भिन्न था। चरवी की मात्रा केवल १० प्रतिशत तक मर्यादित की गई थी। (पूर्व के अभ्यासो मे वह १५ से २० प्रतिशत थी।) उन्होने न केवल मास, परतु मछली और समुद्री आहार भी वर्ज्य गिने थे। दूध को भी मासाहार माना था। मेदरहित दूध मे से बना थोडा दही (yogurt) और अडे के श्वेत भाग की छूट दी गई थी। अगर रोग खूब आगे बढा हो तो डॉ. डीन ओर्निश के मतानुसार यह जरूरी था। उनके मतानुसार इस कार्यक्रम के अन्य पहलुओ के साथ ऐसा आहार कॉरोनरी धमनियो मे जमी हुई चरबी को पिघाल देता है। 'पेट स्केन' द्वारा (Pocitronemission tomography) डॉ डीन ओर्निशने इस कार्यक्रम से होनेवाले फायदे का अभ्यास किया। आहार नियमन, लगभग ४० मिनिट चलना, शवासन, ध्यान, समूहसवाद और मुक्तरूप से भावनाओ के आदान-प्रदान का इस कार्यक्रम मे समावेश होता था। डॉ. ओर्निश का एक रसप्रद अवलोकन यह था कि इस कार्यक्रम मे हिस्सा लेनेवालो को उनकी जीवन पद्धति मे परिवर्तन करने की प्रेरणा ध्यान द्वारा मिलती थी। अर्थात् चुस्त शाकाहारी बनने की और शराव तथा तमाकू को तिलाजलि देने की प्रेरणा ध्यान द्वारा मिलती थी।

शिथिलीकरण अधिक आसान वनता है।

(४) शवासन मे शरीर के स्नायुओ को सिर से पैर तक एक के वाद एक थोडे खीचकर फिरसे शिथिल किये जाते है।

(५) शरीर के जो हिस्से खीच रहे है और शिथिल किये जा रहे है उसके ऊपर चेतना केन्द्रित करना वह शवासन का अगत्य का पहलू है।

हमारी जागृति के सोलह घण्टे दरमियान हमारी चेतना अपनी जागृति के समय के शायद ही १० प्रतिशत यानी कि सिर्फ देढ घण्टा ही वर्तमान मे होता है वैसा अवलोकन किया गया है। शेष समय हमारा ध्यान नीचे वताया अनुसार भूतकाल या भविष्यकाल मे होता है। 'वह कार्य मुझे नही करना चाहिए था।' 'मै चाहता हूॅ कि वैसी परिस्थिति न आये।' 'वैसा हुआ होता तो अच्छा होता' और उसके अनुसार इत्यादि।

जव हमारी चेतना भूत या भविष्यमे हो तव अधिक से अधिक भावात्मक तनाव पैदा होता है। 'शवासन' व्यक्ति को ध्यान के लिए तैयार करता है। अतिरिक्त ध्यान की प्रविधि भी वहुत सरल है।

° ° °

'समय यानी कि प्रकाश को हमारे पास पहुॅचने मे जो रोकता है वह। परमात्मा की प्राप्ति मे दीवाररूप समय एक सवसे वडा अवरोध है। और सिर्फ समय ही नही परन्तु अनित्यताऍ, केवल अनित्य पदार्थ नही लेकिन अनित्य अनुरागो, सिर्फ अनुरागो ही नही परन्तु समय का दाग और गध भी।

—एकहार्ट (Eckhart)

नर्वस सिस्टम) कहते है। उसके दो विभाग है• अनुकम्पी (सिम्पेथेटिक) और सहानुकम्पी (पेरासिम्पेथेटिक) सकट की स्थिति मे जो कार्यरत वनते है उसे अनुकम्पी तत्र कहा जाता है। यह तत्र जाग्रत होने पर एड्रिनलिन और कोर्टिकोस्टेरॉइड हॉर्मोन स्राव की वृद्धि होती है। उससे हृदय की गति वढती है। रक्त दवाव ऊँचा जाता है। रक्त के प्लेटलेट्स परमाणु चीपक जाने से रक्त की गाढाई वढती है। शारीरिक प्राणवायु की आवश्यकता वढती है और रक्त मे लेक्टिक एसिड की मात्रा वढती है। शरीर का घिसाव वढता है। भौतिकशास्त्र की परिभाषा मे एन्ट्रोपी (entropy) के दर मे वढावा होता है।

शवासन को आसनो का राजा माना जाता है। इस आसन का उद्देश उसके नामानुसार है। मृत शरीर जैसी स्थिति प्राप्त करने का है। डॉ. डींन ओर्निश के कार्यक्रम मे अपनायी गई तकनिक को अमरिका मे स्थायी हुए स्वामी सच्चिदानदजी ने तैयार की है। इसका मुख्य मुद्दा यह है कि स्नायुओ का पूर्ववर्ती खिचाव शारीरिक स्नायुओ के उचित शिथिलीकरण के लिए जरूरी है। यह एक अद्‌भुत सकल्पना है। उपरात स्नायुओ के अमुक समूह को खीचते वक्त ऐसा मानना नही चाहिए कि जितना अधिक खिचाव होगा उतना अधिक अच्छा शिथिलीकरण होगा। खिचाव इतना होना चाहिए कि उससे आह्लादक सवेदन उत्पन्न होना चाहिए। यह व्यायाम करते समय व्यक्ति की चेतना खिचाव और शिथिलीकरण की प्रक्रिया पर केन्द्रित होनी चाहिए। शरीर के जिस भाग का खिचाव हो रहा है उस पर चेतना केन्द्रित करना, यह तकनिक का प्रधान लक्षण है। ऐसा न होने पर शवासन का लाभ प्राप्त नही होता।

विज्ञान ने सिद्ध किया है कि भूत और भविष्यकाल मे हमारी

अनुभव होता है। शवासन की स्थिति मे पॉच-दश मिनिट रह कर बाद मे व्यक्ति आराम से वैठकर ऑखे वद करता है और अपनी चेतना श्वसनक्रिया पर केन्द्रित करता है। इतना ही है ध्यान का तरीका।

जव व्यक्ति अपने श्वास के साथ लीन हो जाता है तव ओम् के ध्वनि पर चेतना को केन्द्रित करके पॉच वार 'ओमम्म्म्म्' लवी ध्वनि से वोलता है। ओम् ध्वनि के साथ एकरूप होने के वाद दूसरे पॉच मिनट श्वसन के साथ एकरूप होकर वैठता है। अंत मे फिर ओमकार के नाद से ध्यान की क्रिया पूरी करता है।

*   *   *

"ईश्वरके साथ हमारा ऐक्य होने का ज्ञान यही मानव जीवन का लक्ष्य और हेतु है।"

—एलडोस हक्सली

हिस्से मे सुयोग्य वायुसचार होता है। उदरीय श्वसन का यह शारीरिक फायदा है। निद्रा और शिथिलीकरण की स्थिति दरम्यान श्वसन अपने आप ही उदरीय बनता है, ऐसा दिखाई दिया है। चितायुक्त स्थिति दरम्यान श्वसन तीव्र बनता है और पूर्णाश छाती मे होता रहता है। जब व्यक्ति इरादापूर्वक उदर द्वारा धीमी और गहरी सॉस लेता है तब शरीर पर तनाव के असर मे घटाव होता है। उदरीय श्वसन दरम्यान दिमागी तरग (Brain Wave Pattern) आहिस्ता आहिस्ता आल्फा मे परिवर्तन होने से यह सिद्ध होता है। उदरीय श्वसन के अभ्यास के लिए आप की पीठ सीधी रखकर आरामदायक स्थिति मे बैठे। हमेशा नाक द्वारा श्वासोच्छ्वास कीजिए। नाक गरम हवा को छानता है। आपका दायॉ हाथ छाती पर और बायॉ हाथ आपके उदर पर रखे। जैसे आप सॉस अदर लेगे, आपके उदरीय स्नायुओं का हलन चलन अनुभव करने मे आपको मदद करेगा। जैसे आप सॉस अदर लेने का प्रारभ करेगे, उदर पर रहे आपके बाये हाथ की ऊँचा होने की क्रिया शुरू होनी चाहिए। लेकिन आपके दाये हाथ का हलन चलन बहुत ही कम होना चाहिए। आपके उदरीय स्नायुओ को सकुचित करते करते बन सके उतनी हवा आप बाहर निकाले। इस प्रक्रिया के समय आपके हाथ का पुन: हलन चलन होना चाहिए। यह है उदरीय श्वसन।

अगर आप उदरीय श्वसन का नियमित रूपसे अभ्यास करेंगे तो समय बितने पर वह अनुभव से स्वाभाविक बन जायेगा। अगर इस प्रक्रिया मे आप कठिनाई अनुभव करते है तो जमीन पर विरामदायक स्थिति मे पडे रहे और धीरे से कोई हलका वजन आपके उदर पर रखे। उदरीय श्वसन उस वजन को आपके श्वासोच्छ्वास के साथ ऊँचा नीचा करेगा।

को खीचते वक्त उस पर चेतना ला कर स्नायु खीचने की क्रिया का आनद भोगना है। इस प्रकार चेतना को वर्तमान मे लाना, यानी कि खीचाव की प्रक्रिया पर लाना वह वहुत ही महत्त्व का है। इस पुस्तक मे अन्यत्र वताये अनुसार हमारी जाग्रतावस्था दरम्यान हमारी चेतना अधिकतर भूतकाल अथवा भविष्यकाल मे विचरती होती है। अनुभव से यह ज्ञात हुआ है कि जव हमारी चेतना भूत या भविष्य मे होती है तब तनाव अधिकतम होता है।

पैर से सिर तक के प्रत्येक स्नायुजूथ को खीच कर शिथिल करते ममय चेतना को प्रत्येक क्रिया पर लाना जरूरी है। इस प्रकार खीचाव और शिथिलीकरण के क्रमश· व्यायाम से उत्तरोत्तर गहरा शिथिलीकरण होता है। इसे शवासन कहते है।

* * *

"अनत जीवन के प्रवाह मे विवश वनकर वह जाना वह एक वावत है। अनत जीवन यात्रा की समग्र उपस्थिति का एक साथ वीडा उठान' वह विलकुल ही अलग वावत है और यही दिव्य चेतना को स्पष्टतया अनुरूप है।"

—वोथियस

ध्यान दरमियान भेजे के अत्यत क्रियाशील अग्र विभाग मे मे मद लयबद्ध आल्फा तरग उत्पन्न होते है। दिमाग के इस विभाग मे से इन तरगो का प्रतिभाव मानसिक शिथिलीकरण का सबूत है। ऐसा अनुभव हुआ है कि शिथिलीकरण की इस स्थिति मे व्यक्ति का मन दिशा और काल की मर्यादा लाघकर 'वैश्विक मन' के साथ एकता अनुभव करता है। इस अवस्था का वर्णन करना कठिन है। वह मूलभूत रूप से अनुभव का विषय है। हमारे यहॉ ध्यान के वारे मे भिन्न भिन्न विचारधारा प्रवर्तमान है। ध्यान की कुछ पद्धति अनुसार ध्यान करनेवाला व्यक्ति अमुक दृश्य जैसे कि प्रकाश या मत्र पर केन्दीकरण करता है। ये सारी पद्धतियॉ लाभ पहॅुचानेवाली है। ध्यान करने की सरल रीति यह है कि जिस मे व्यक्ति अपने श्वसन पर चेतना केन्द्रित करे। इस तरह फायदा यह है कि सब लोग आसानीसे उसे कर सकते है। श्वसन के द्वारा बाह्य विश्व के साथ वास्तव मे हम सलग्न हो जाते है। रसप्रद भाग तो यह है कि समय का अधिकतर हिस्सा दरम्यान हमे अपने श्वसन का खयाल होता नही है। ध्यान की तकनीक मे हम सिर्फ अपनी चेतना को अपने श्वसन पर लाते है। ध्यान करते समय अमुक निश्चित रूप से या विशिष्ट तरीके से श्वसन करने की जरूरत नही है कारण कि वह मन की शाति को दखल पहॅुचायेगा। शिथिल की हुई स्थिति मे सिर्फ ऑखे बद कर के आराम से बैठना या किसी भी अनुकूल स्थिति मे पडा रहना और तुम्हारी चेतना को श्वसन की स्वाभाविक प्रक्रिया पर लाना वही ध्यान का हार्द है। मन की शाति के लिए प्रयत्न करने की या सर्व विचारो से मुक्त होने की कि मनको रिक्त करने की कोई जरूरत नही है। विचारो का

प्रकाशकीय निवेदन

साहित्यसम्राट् स्व० पू० आचार्यदेव श्रीविजयलावण्यसूरीश्वरजी म०श्रीए जैन शासनना ज्योतिर्धर प० पू० आचार्य भगवंत श्रीसिद्धसेन दिवाकर सूरीश्वरजी म०श्री विरचित संस्कृत बत्रीश बत्रीशीओ (द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका) पैकी एकवीश द्वात्रिंशिकाओ उपलब्ध छे ते उपर रचेली किरणावलीटीका प्रकाशित करतां अमने अनहद आनंद थाय छे। दर्शनशास्त्रमां आ ग्रंथ उच्चकोटिनो गणाय छे। आनी रचना पद्यमां करायेली छे एटले मूलकर्ता महर्षिना कवित्वनो ख्याल पण वाचकोने आवी शकशे।

कविदिवाकर पू० आ० श्रीविजयसुशीलसूरीश्वरजी म०श्रीए आ ग्रन्थनु संपादन करी अमने प्रकाशन माटे आप्यो ते अमारुं अहोभाग्य छे।

प्रस्तुत ग्रन्थना प्रकाशनमां मुद्रणालयादिने लई ने रही गयेली स्खलनाओ अंगे विद्वानो अमने जणावशे तो अमो तेमनो आभार मानीशुं अने बीजी आवृत्तिमां ए स्खलनाओ सुधारी लइशुं।

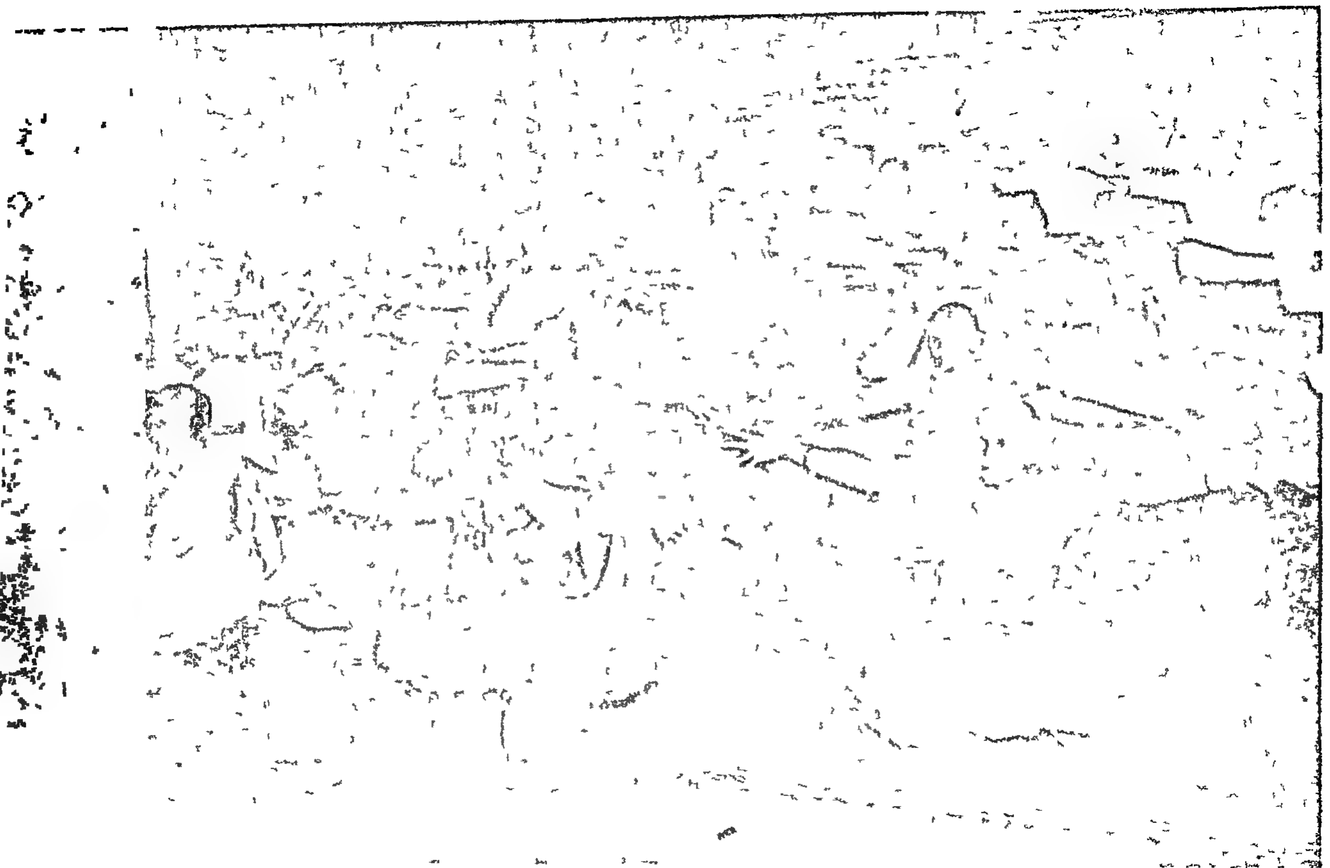
आ ग्रन्थ ऊपर अमारी विनंती स्वीकारी डॉ० पिनाकिन् दवेए विद्वत्ताथी सभर प्रस्तावना लखी आपी छे ते बदल अमो तेमनो आभार मानीए छीए। तेमणे आ ग्रन्थ उपर पीएच्० डी० नी डीग्री प्राप्त करी छे। आ ग्रन्थना प्रकाशनमां असह्य मोंघवारीने

और सीमा रहित है। यह अनुभूति जब होती है तब स्वाभाविक रूपसे ही हमारी शक्तियाँ अमर्यादित बनती है। विश्व के साथ एकता साधी जा सकती है और प्रज्ञा उदित होती है। ये समस्त अनुभव पुन: स्वास्थ्य प्राप्ति मे मदद पहुँचाता है।

जब व्यक्ति इस कार्यक्रम मे हिस्सा लेता है तब जो लाभकर्ता असर सर्व सामान्य रूपसे दिखाई देता है उसका कारण नीचे बतायी गई एक सादी हकीकत है। आम तौर पर हमारे समग्र जीवन दरम्यान हमारा मन हमारे लिए जो भी महत्त्व की बाबत है उनके विचारो मे व्यस्त है। अवकाश और काल मे यह विचार सीमित है जब व्यक्ति श्वसन की प्रक्रिया के साथ ध्यान मे एकाकार होने से अपनी चेतना को वर्तमान मे लाता है। तब मन 'वैश्विक मन' बनता है और समस्त विश्व के साथ ऐक्य अनुभव करता है। उपरात जो तत्त्व अवकाश और काल मे सीमित नही है, जो सर्वव्यापी और सर्वशक्तिमान है उसके साथ ऐक्य की यह अनुभूति स्वास्थ्य की पुन प्राप्ति की प्रक्रिया शुरू करती है। कॉरोनरी हृदय रोग मे स्वास्थ्य की पुन प्राप्ति तो इस प्रक्रिया का केवल गौण फिर भी बहुत ही स्वागत योग्य असर है। शाश्वत वर्तमान क्षण के आनद का अनुभव करने मे ध्यान सहायक बनता है। चलो, हम शाश्वत वर्तमान क्षण को समझे। आधुनिक क्वॉन्टम (Quantum) भौतिक विज्ञान मे रेखिक (Linear) समय के खयाल को तिलाजलि दी गई है। अवकाश और काल को स्थूल पदार्थ माने गये है। समय को भूत, भविष्य और वर्तमान मे बॉटने की प्रणालिका को भौतिक वास्तविक अस्तित्व की केवल एक सुविधा मानी गई है। ऐसा होने पर भी वास्तव मे समय को शाश्वत माना जाता है। दिवस दरम्यान

थी। २०वी शताब्दी के प्रारभ से श्रोडीन्जर (Schrodinger) और आइन्स्टाईन जैसे वैज्ञानिको ने प्रतिपादित किया कि यह केवल हेतुलक्षी आग्रह अत्यत ठोसपना का आग्रह रखनेवाला अभिगम विश्व मे बनती घटनाओ को अमुक सीमा तक ही समझा सकता है। और घटनाओ का एक विशाल भडार जब केवल यथार्थवाद की दृष्टि से देखा जाता है तब वह एक रहस्य बन जाता है। यह बीसवी शती की भौतिक विज्ञान की आधुनिक विचारधारा और न्यूटन के भौतिकशास्त्र के बीच भेद समझाने के लिए इशावास्य उपनिषद का कथन बहुत ही प्रस्तुत है। यह उपनिषद शाश्वत तत्त्व के तमाम आविर्भावो के ज्ञान को विज्ञान कहते हैं। विज्ञान को उपनिषद अविद्या कहते है और शाश्वत तत्त्व के ज्ञान को विद्या कहते है। परतु अविद्या का अर्थ विद्याविरोधी ऐसा सूचित नही किया गया है। अविद्या यानी विद्या से भिन्न यही उसका अर्थ है। विद्यारहित अविद्या हमे अधकार मे खीच ले जाती है। लेकिन उपनिषद आगे चलकर कहता है कि अविद्या रहित विद्या तो घोर अधकार मे ले जाती है।

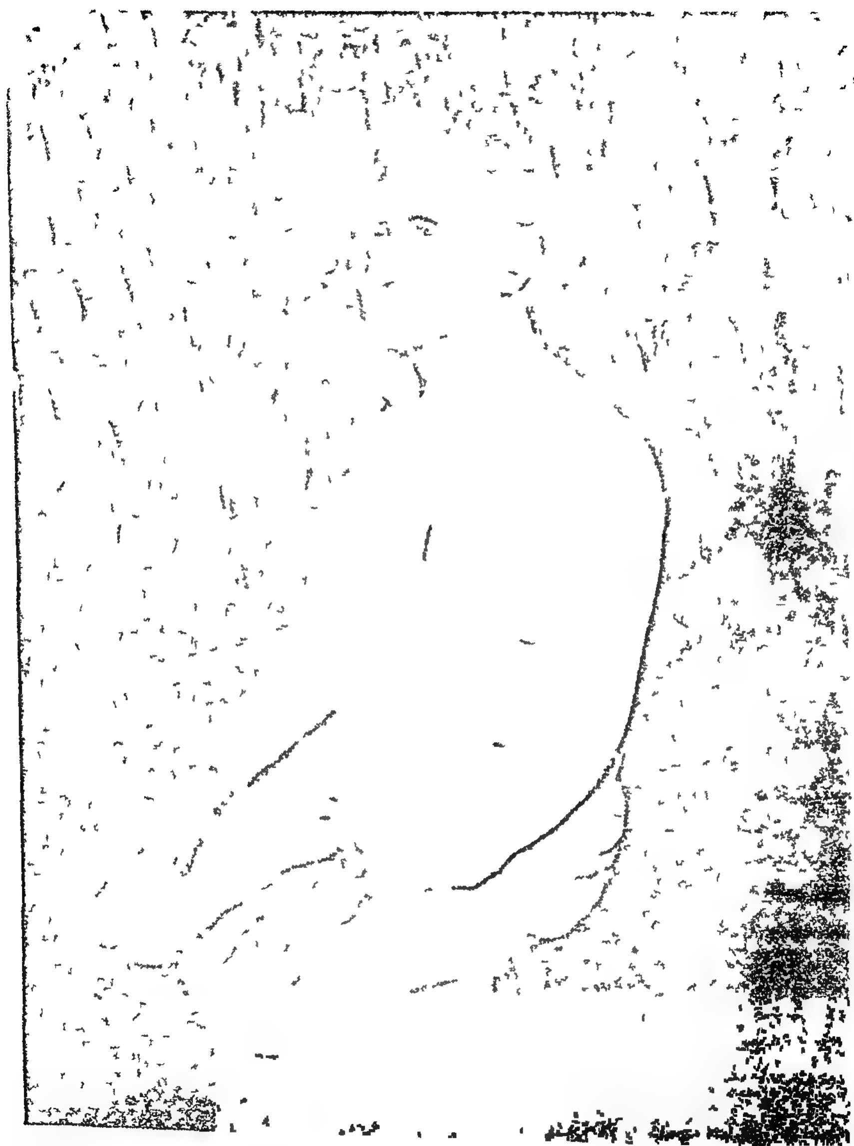
वह खुशी की बात है कि आधुनिक भौतिकशास्त्र की क्वॉन्टम (Quantum) छलाग 'अविद्या' और 'विद्या' के बीच के अतराल को पाट रही है। आधुनिक भौतिकशास्त्रानुसार विश्व के आविर्भावो के ज्ञान मे उस विश्वव्यापी शाश्वत तत्त्व के ज्ञान समाविष्ट होता है। उस शाश्वत तत्त्व को विज्ञान वैश्विक मानस (Universal Mind) या चेतना कहते है।



हलका व्यायाम



समूहप्रार्थना में हिस्सा लेते हुए गुजरात राज्य के राज्यपाल डॉ. सरुपसिंह,
डॉ. रमेश कापडिया (लेखक) और श्री यशवत शुक्ल



श्री अे. आर. शेख — पृष्ठ ८३

प्रत्यक्षीकरण

तुम्हारे मन मे (मानसपट पर) चित्र का सर्जन करना उसे प्रत्यक्षीकरण कहते है। ध्यान करने के बाद वह सरल वनता है। क्योकि चेतना को केन्द्रित करने मे ध्यान मददरूप वनता है। प्रत्यक्षीकरण यह व्यर्थ मनोकामना (Wishful thinking) या मानसिक तरग (fantasy) है ही नही। ये दोनो अकेन्द्रित और निष्क्रिय है। प्रत्यक्षीकरण केन्द्रित और क्रियाशील है। प्रत्यक्षीकरण ध्यान का उपयोग उपचारकारक है। ध्यान दरमियान कॉरोनरी धमनी मे जम गये अवरोध पिघलते हैं तथापि हृदय के स्नायुओ को पर्याप्त मात्रा मे रक्त का सचार हो रहा है वैसा कॉरोनरी हृदयरोग के दर्दी प्रत्यक्षीकरण करते है। कॉरोनरी धमनियो को पूर्ण रूपेण स्वस्थ करने के इस कार्यक्रम मे जो पद्धति है उस मे प्रत्यक्षीकरण के लिए सवसे अधिक सशोधन करना पडे वैसी और सवसे अधिक शक्तिशाली तकनीक (technique) है।

एक या दूजे समय पर हमारे सब के प्रति अनुचित वर्ताव सभवित है। गुस्सा हो कर इस का प्रतिभाव कई वार हम देते है। जव इस क्रोध का रचनात्मक समाधान नही होता तव हम उसे अपने हृदय मे भरकर दिन-प्रतिदिन अतर मे समाये रखते है। क्रोध हमेशा असगत नही होता है। अनुचित नही होता। कुछ कुछ प्रसग पर क्रोध करना आरोग्यप्रद है। अगर आप उस क्रोध को रचनात्मक

सको ऐसा कुछ न करने योग्य कार्य आपने किया हो अथवा करने योग्य कार्य न किया हो, (यह क्या है वह बात आप को किसी से कहने की आवश्यकता नही है) सिर्फ उसके प्रत्यक्षीकरण के समय आप के श्वसन मे, हृदय की रफ्तार मे, स्नायुओ के खिचाव आदि मे होते परिवर्तन पर ध्यान दे। पहले के प्रत्येक प्रत्यक्षीकरण मे आपने उस व्यक्ति के लिए जो दया की लागनी अनुभव की थी वैसी ही लागनी अब आप अपने आप पर बताये, "मैंने भूल की और उसमे से सबक सीखा। मैं अनजान था। मुझे सच्ची समझ की अधिक आवश्यकता थी। भूतकाल तो भूतकाल है। मैंने बहुत सहन किया है, लेकिन जो घटना घटी उस के लिए मै अपने आप को क्षमा करता हूँ।" तनाव मे से मुक्ति पाने का सभवत· आप को अनुभव होगा। इस प्रक्रिया को पूर्ण करने के बाद थोडे मिनट तक आप के श्वसन का निरीक्षण करना चालू रखे और फिर धीरे से ऑखे खोले। अपनी जिम्मेदारी मे से आप मुक्त होते नही है। आप जो दर्द, तनाव और अपराध की भावनाओ के नीचे दबे हुए थे उसमे से मुक्ति प्राप्त करने मे आप को यह क्रिया सहायता करेगी। आप की विचारधारा और विवेक बुद्धि अधिक निर्मल बनेगी और आप की भूल के लिए जो कुछ करने की आवश्यकता है वह अधिक रचनात्मक तरीके से कर सकेगे।

यु.एस.ए के स्प्रिनड्रिफ्ट (Sprindrift) संशोधन कारों ने मन की सर्वव्यापकता (Universality) समझाता हुआ एक दिलचस्प ऐसा सुन्दर प्रयोग किया है। एक परीक्षण में, राई के बीज दो समान विभागों मे विभाजित किये गये थे। वर्मीक्युलेट से (Vermiculate – एक प्रकार की खाद) भरे हुए एक छिछले पात्र में उसे रखे गये। ये बीज (seeds) को 'अ' और 'ब' में विभाजित करती एक रस्सी पात्र के बीच मे रखी गई। एक विभाग के बीज के लिए प्रार्थना की गई जब कि दूसरे विभाग के बीज को प्रार्थना बगैर रखे गए। बीज ऊगने पर राई के पतले और लंबे अंकुर की जाँच की गई। जाँच मे मालूम पड़ा कि जिस विभाग के लिए प्रार्थना की गई थी उस विभाग मे, जिस के लिए प्रार्थना की नहीं थी उस विभाग की निसबत बहुत ज्यादा राई के अंकुर फूटे। इस परिकल्पना (Hypothesis) की छानबीन के लिए स्पिनड्रीफ्ट संशोधनकारो ने खारा पानी मिलाकर राई के बीज पर अवरोध डाला। पुन. उपर्युक्त प्रयोग किया। इस के परिणाम विशेष आश्चर्यजनक थे। बिना प्रार्थना के बीजांकुर के प्रमाण से जिस के लिए प्रार्थना नहीं की गई थी ऐसे बीज की मात्रा पक्की तरह अधिक थी। बीज को ऊगने के लिए जब पतिकूल संयोग थे तब प्रार्थना अधिक लाभप्रद बनी। मन सर्वत्र व्याप्त है और हम समग्र विश्व के साथ एक तत्त्व से जुड़े हुए है। उस की प्रतीति इस सुन्दर प्रयोग द्वारा होती है।

*

आधुनिक संकल्पना मे औरो से असबद्ध और स्वायत्त अस्तित्व के लिए कोई भी सभावना नहीं है।

— ए एन. वाईटहेड

है। जब व्यक्ति आल्फा वेव की स्थिति मे होता है तब व्यक्ति के अदर स्वास्थ्य प्राप्ति की प्रतिक्रिया को गति मिलती है। अतिरिक्त व्यक्ति के सूचन ग्रहण करने की शक्ति भी बढती है। इस ग्रहणशक्ति के बढने के कारण कुछ आश्चर्यजनक परिणाम प्राप्त हुए है। विश्वभर के आध्यात्मिक चिकित्सक जब उनके मरीजो को रोगमुक्त करने मे लगे हुए थे तब उन चिकित्सको के दिमाग मे प्रति सेकन्ड दस आल्फा तरग उत्पन्न होते थे। आश्चर्य की बात तो यह थी कि अनायास ही इन रोगियो के दिमाग मे भी आल्फा तरग उत्पन्न होते थे और इस प्रकार आध्यात्मिक चिकित्सक और मरीज दोनो के भेजे मे तालबद्ध रीतिमे ये तरग उत्पन्न हुए। जिन व्यक्तिओ मे प्रति सेकन्ड दस आल्फा तरग उत्पन्न होते है उनकी रोग प्रतिकारक शक्ति बहुत ही सतेज बनती है। और वे लोग जल्दी रोगमुक्त होते हैं। व्यक्ति जब आल्फा स्तर पर रहता है तब हकारात्मक (Affirmations) सूचनो और प्रत्यक्षीकरण (Visualisation) के संयोजन से व्यक्ति स्वय स्वस्थ बन सकता है। और स्वास्थ्यप्रद विचारो तथा शक्ति दूसरे व्यक्तिओ को भी प्रक्षिप्त कर उन्हे भी स्वास्थ्य प्रदान कर सकते है।

बायोफीडबेक उपचार मे व्यक्ति शात जगह मे आरामप्रद स्थिति मे बैठता है। उसके भेजे के अग्रभाग पर विद्युत (Electrode) रखा जाता है। और eeg दिमागी तरगो का ग्राफ लिया जाता है। सामान्य रीतिमे दिमाग के अग्रभाग मे से बीटा तरग आलेखित होते है। जब व्यक्ति का मन बेचैनीभरी स्थिति मे हो तब बहुत ही अनियमित और वेगवान बीटा तरग उत्पन्न होते है। मन की जब ऐसी स्थिति होती है तब रोगप्रतिकारक शक्ति को गति देनेवाले - न्यूरो पेप्टाइड्स और एन्डोरफीन्स के स्राव कम मात्रा मे उत्पन्न होते है। बायोफीडबेक चिकित्सक व्यक्ति को उसके जीवन के सुखद

आहार

कॉरोनरी हृदय रोग मे ऍथरोस्क्लेरिसिस की प्रक्रिया को उलटाने के लिए जिस भोजन की सिफारिश की गई है वह शुद्ध शाकाहार है। पूर्ण कॅलरी का आहार लेना हो, उसके १० प्रतिशत तक चरवी, ५ से १० मिलिग्राम कोलेस्टेरोल, १० प्रतिशत से १५ प्रतिशत प्रोटीन और ६५ प्रतिशत से ७५ प्रतिशत हरी सब्जी, फल और नाजमे से मिलते कार्बोदित युक्त आहार लेना चाहिये। दूध को भी विनशाकाहार गिना गया है। मलाई निकाले दूधमे से बना ३-४ औंस दही लिया जा सकता है। अडे का श्वेत भाग उपयोगमे लिया जा सकता है। समतोल आहार खास करके फल, सब्जी, भाजी और नाजका होना आवश्यक है। तदुरुस्त व्यक्ति कि जिन के कोलेस्टेरोल २०० मिलिग्राम से कम हो वह अपने आहार मे थोडी छूट ले सकते है।

जिस आहार की वर्तमान अमेरिकन हार्ट एसोसियेशनने सिफारिश की है वह पर्याप्त कॅलरी के ३० प्रतिशत से कम चरबी तथा ३०० मिलिग्राम से कम कोलेस्टेरोल का है। आहार मे मास की मात्रा प्रमाण मे कम लेने की सलाह है। चीकन, मच्छी तथा कम चरबी वाले दूध मे से बनते खाद्य पदार्थ सप्रमाण लिए जा सकते है। कॉरोनरी धमनियो मे एथरोस्क्लेरोसिस को पलटने के आदर्श को सिद्ध करने मे इस प्रकार का आहार असफल रहा है। जीवनशैली से

॥ ॐ ह्रीँ अर्हं नमः ॥

वन्दे शासनसम्राट्टं श्रीनेमिसूरिं जगद्गुरुम् ।

शब्द-साहित्यसम्राट्श्रीलावण्यसूरिसद्गुरुम् ॥१॥

संपादकीय वक्तव्य

"द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका" एटले बत्रीश बत्रीशीओ । आना रचयिता कविसम्राट् अने तार्किकशिरोमणि सूरिशेखर श्रीसिद्ध-सेन दिवाकरजी महाराज छे। आ ग्रंथ 'बत्तीशा बत्तीशी' ना नामथी पण ख्यात छे। काळनी विषमताने लइने बत्रीस बत्रीशीओ पैकी हाल वर्त्तमान काले २१ बत्रीशीओ उपलब्ध थाय छे, जे मूळमात्र भावनगरनो 'आत्मानंद सभा' तरफथी पूर्वे प्रकाशित थयेल छे। आ ग्रन्थ दर्शनशास्त्रमां मूर्धन्य कोटिनो होई मोखरे गणाय छे। विषय अने भाषा घणी मुश्केलीथी समजाय एवी छे, एटले एना भावना उद्घाटन द्वारा वर्त्तमानकालीन विद्वानो ने जिज्ञासुओनी जिज्ञासानी पूर्ति निमित्ते, अमारा स्व० साहित्यसम्राट्ट पूज्यपाद गुरुदेव **श्रीविजयलावण्यसूरीश्वरजी म०श्रीए 'किरणावली'** नामनी टीका रची छे। आ २१ बत्रीशीओ पैकी एक एक एवी पांच पुस्तिकाओमां पांच बत्रीशीओ स्व० प० पू० गुरुदेवे सुधारीने तैयार करेली, ते आज ग्रंथमाळा तरफथी पूर्वे प्रकाशित थई हती। ए पुस्तिकाओ पण दुर्लभ बनी गई। एटले २१ बत्रीशीओ एक ज ग्रन्थमां सळंग एक ज ग्रन्थरूपे प्रकट थाय तो ठीक के जेथी एकी-साथे एक ज पुस्तिकाथी काम सरे। प्रांते एना संपादननुं कार्य अमारे शिरे आव्युं ।

घटक गिना गया है। मलाई निकाले गये दूध मे से वनाया थोडा दही लेने की छूट है।

(३) कॉम्लेक्स कार्बोदित यानी कि हरे, ताजा सब्जी भाजी, फल और अनाज मे से मिलते कार्वोदित अधिक प्रमाण मे लेना होगा। खॉड ओर गुड जैसे परिशुद्ध किये कार्वोदित मर्यादित करने है।

ध्यान के अभ्यास से योग्य आहार लेने की स्फूरणा अपने आप होती है। जो कि शुद्ध शाकाहारी और मिताहारी व्यक्ति ध्यान का फायदा जल्दी अनुभव करता है ऐसा मालूम पडा है, साथमे यह भी याद रखना जरूरी है कि शाकाहार यदि अधिक चरबीयुक्त हो और नमक मसाले मे भरपूर हो तो तो वह 'योगिक' नही रहता।

मादक पेय के सवध मे विना दूध की काली चाय, कॉफी जैसे पेय सलाहभरे नही है। नशीले द्रव्य के वारेमे कोई विशेष कहने की जरूरत नही है।

आहार के वारेमे खूव ही दरकार और आग्रह की आवश्यकता नही है। आगे वताया अनुसार वहुत ही उत्तेजक खाद्य पदार्थों कि पेय कम प्रमाण मे लेना हितकारी है। व्यक्ति को स्वेच्छा से शाकाहारी वनने का कि कम चरवीवाली खुराक लेना कठिन मालूम हो तो सचमुच उसकी चिता करने की जरूरत नही है। कारण कि वहुत समय वितने पर ध्यान के नियमित अभ्यास से अयोग्य आहार की इच्छा धीरे धीरे घटती जायेगी।

आहार हमारे जीवन का अविभाज्य अग है।ऐलॉपथी उपचार-पद्धति मे भी अव आहार का महत्त्व समझ मे आ रहा है। सिर्फ हम पोषण के लिए नही लेकिन आनद के लिए भी खाते है। इससे

सुस्ती महसूस होती है। कुछ किस्सो मे तवियत पर भी विपरीत असर होता है। स्थूलता अर्थात् आवश्यकता से अधिक वजन अब रोग माना जाता है। विरासत मे प्राप्त स्थूलता कम देखने को मिलती है। स्थूलता अधिकतर अधिक प्रमाण मे खाने की और अकर्मण्य आदतो का परिणाम है। अकाल अवसान का या रोगो का भय वह वजन कम करने के लिए असरकारक प्रेरक बल नही है। उससे उलटा आरोग्य मे सुधार हो, शक्ति बढे, व्यक्तित्व का विकास हो और जीवन मे सफलता मिले इस वास्ते वजन घटाना चाहिए यह दृष्टिकोण अधिक असरकारक बन सकता है। डॉ. डीन ओर्निश ने हृदयरोग को रोकने के और कॉरोनरी धमनियो मे जम गई चरबी को पिघलाकर उसे फिर से सक्रिय बनाने का अद्भुत कार्यक्रम पिछले सत्रह साल से अमरिका मे कर रहे है। उन्होने अपनी किताब 'ईट मोर, वे लेस' मे आहारविषयक सुदर मार्गदर्शन दिया है।

स्थूलकाय व्यक्ति कॅलरीनियत्रण द्वारा वजन घटाने के प्रयत्न करते है लेकिन उसमे ज्यादातर सफलता नही मिलती; जब कि आहार मे कॅलरी का घटाव किया जाता है तब शरीर कॅलरी दहन का दर कम करता है। कारण कि शरीर किसी भी परिवर्तन के सामने प्रतिकार करता है, और जो स्थिति है उसे बनाये रखने का अत्यधिक प्रयत्न करता है। इससे वजन घटाना मुश्किल बनता है। इस तरह सफलता न मिलने पर व्यक्ति निराश होकर डायेटिग छोड देता है। परिणाम स्वरूप वजन पुन· वढ जाता है। आखिर व्यक्ति अपने भाग्य को दोष देता है और स्वय मोटा बना रहने के लिए ही पैदा हुआ है और अपना मनोबल कमजोर है ऐसा मानकर हताश बनता है।

उत्क्रान्ति और शारीरिक परिवर्तन

सालो पहले जब सदेशाव्यवहार और वाहनव्यवहार आज जैसा न था तब लोग अपने मुल्क मे जो कुछ सुलभ था, खाकर निर्वाह करते थे। अब ऐसा रहा नही है। सारे साल दरम्यान प्रत्येक प्रकार की खुराक मिल जाती है।

अतिम कुछ दशक दरमियान विश्व मे और हमारे देश मे आहार और जीवन शैली मे बुनियादी परिवर्तन आये है। हमारा आहार पथ्य बन सके, इसके लिए हमारे शरीर को परिवर्तन की प्रक्रिया मे पर्याप्त अवकाश मिला नही है। शरीर परिवर्तन की प्रक्रिया मद होती है, उसमे हजारो साल लग जाते है।

मेद यह आज की समस्या है। हजारो साल पहले लोगो को पर्याप्त आहार मिलता नही था। आज भी विश्व के अमुक हिस्से मे और अमुक वर्ग के लोगो के लिए ही अनाज विपुल प्रमाण मे उपलब्ध है। शेष विशाल वर्ग को तो पूरा खाना नसीब नही होता है। इसलिए उनके लिए वजन कम करनेका प्रश्न ही नही उठता।

शरीर आहार की चरबी का आसानी से अनामत ऊर्जा के रूप मे सग्रह करता है। खुराक न लिया जाय उस स्थिति मे यह ऊर्जा उप ग मे लेता है। ऐसा होने पर भी जब वज़न कम करनेका

आहार की चरवी का आसानी से शरीर की चरवी मे रूपान्तर होता है। आहार के कार्वोहाइड्रेट या प्रोटीन को शरीर की चरवी मे रूपान्तरित करने के लिए, आहार की चरवी का रूपान्तर करने मे खर्च होती ऊर्जा से दस गुनी ऊर्जा की जरूरत पडती है। आहार की चरबी की सौ कॅलरी का शरीर की चरबी मे रूपातर होने पर सिर्फ २५ कॅलरी खर्च होती है, जब कि कार्वोहाइड्रेट या प्रोटीन की सौ कॅलरी का शरीर की चरवी मे रूपान्तर करने मे २३ कॅलरी खर्च होती है। इसलिये शरीर उसका सग्रह करने के बजाय तात्कालिक उपयोग मे लेना पसद करता है। परिणाम स्वरूप आहार के कार्वोहाइड्रेट और प्रोटीन का सिर्फ एक प्रतिशत शरीर की चरबी मे रूपान्तरित होता है। जब आप चरबी की अपेक्षा कार्वोहाइड्रेट और प्रोटीन अधिक लेते है तब आप कम कॅलरी लेने पर भी अधिक शक्ति अनुभव करते है। शरीर को अगत्य की क्रियाओ के लिए आहार मे कुल कॅलरी के ४ से ६ प्रतिशत चरवी पर्याप्त होती है। आहार मे ३० प्रतिशत से अधिक चरवी लेने से स्थूलता, हृदयरोग और दूसरी बीमारियॉ होती है।

रूढिगत डायेटिग करते वक्त शरीर की चरवी के कोष सकुचित होते है, लेकिन उसकी सख्या कम नही होती। ऐसे डायेटिग से भूखे होने का भाव महसूस हुआ करता है उपरात शरीर अपना चयापचय का प्रमाण मद कर देता है। परिणामरूप कम खाने पर भी वजन घटता नही है और व्यक्ति निरुत्साही बनता है। वार वार डायेटिग करने और छोडने से वजन घटाना मुश्किल वनता है। आहार का प्रमाण कम किए बगैर उसमे सिर्फ चरवी का प्रमाण घटाया जाये तो वजन क्रमश· घटता है। परपरागत डायेटिग मे ऐसा

जटिल कार्बोहाइड्रेट अधिक और सादा बहुत कम मात्रा मे होता है।

खॉड, गुड, शहद ग्लुकोझ और शराब सादे कार्बोहाइड्रेट है। उनका रक्त मे शीघ्र मिश्रित हो जाने से, शर्करा का प्रमाण तेजी से बढता है। फल स्वरूप इन्सुलिन का स्राव बढता है, जिससे रक्तमे रही सर्करा की मात्रा क्वचित जरूरत से ज्यादा घट जाती है। दाग पोल्सझिन्की के मतानुसार रक्त मे जब शर्करा का प्रमाण अधिक प्रमाण मे घटता है, तब गभीर स्वरूप मे तनाव, डिप्रेशन, ऊर्मियो की अस्थिरता, चिता, उकसाहट और मीठा खाने की तीव्र इच्छा होती है। सादा कार्बोहाइड्रेट अधिक प्रमाण मे खाने पर भी सतोष होता नही है। इन्स्युलिन के प्रमाणाधिक स्राव से चरवी अधिक जमा होती है, रक्त मे कोलेस्टेरॉल बढता है। रक्त मे होती शर्करा की बढघट शरीर सहन नही कर सकता। परिणाम स्वरूप थकान, मानसिक अस्वस्थता और एकाग्रता का अभाव महसूस होता है।

शराब सादा कार्बोहाइड्रेट होने के अतिरिक्त चरबी का दहन करने की क्षमता को मद कर देता है। ऐसा ज्ञात हुआ है कि सिर्फ तीन औस शराब शरीर की चरबी का दहन करने की शक्ति मे ३३ प्रतिशत घटाव करता है।

प्रोटीन

प्रोटीन के दो प्रकार है: वनस्पति जन्य और प्राणिजन्य। वनस्पतिजन्य प्रोटीन खास करके अनाज, दाल और द्विदल मे होता है। प्राणिजन्य प्रोटीन दूध, अडे, मछली, चिकन और मास मे से मिलता है। शाकाहार मे से मिलते प्रोटीन पूर्ण प्रोटीन नही है। उसमे एक-दो अगत्य के एमिनो प्रोटीन की कमी होती है। शाकाहार मे अनाज और दाल के सयोजन से सपूर्ण प्रोटीन प्राप्त किया जा सकता है।

ॲथरोस्कलॅरॉसिस को मंद करने और क्रमशः मिटाने के वारे मे, सब के सब अभ्यास आहार मे बहुत कम चरबी लेने की तरफदारी करते है। हृदयरोग मिटाने और होता रोकने के लिए ज्यादा से ज्यादा कितना चरबी ली जा सकती है, वह अब सशोधन का विषय बना हुआ है। कम चरबी वाला आहार लेकर ॲथरोस्कलरॉसिस मिटाने के लिये रोगी खुद ही शक्तिमान है, वैसा आत्मविश्वास रोगी मे जाग्रत हो जाये, तो ऐसा आहार वह आसानी से अपना सकता है। इसके लिए रोगी को प्रोत्साहित करने का काम निष्ठावान चिकित्सको का है। गभीर कॉरोनरी हृदयरोग के बहुत से मरीज रोजाना आहार मे सिर्फ १५ से २० ग्राम चरबी लेने से ठीक रहते हे, ऐसा हमारे अभ्यास से मालूम पडा है।

शाकभाजी के अतर्गत नैसर्गिक स्निग्धता का कुशलतापूर्वक उपयोग करके विविध प्रकार की स्वादिष्ट वानगियॉ बनाई जाये, तो जो लोग अधिक चरबी वाली खुराक लेने के अभ्यस्त हो, उन्हे भी ऐसा कम चरबीयुक्त आहार लेना पसंद आता है।

रेषायुक्त आहार

रेषायुक्त आहार के अनेक लाभ है। उसमे विटामिन और क्षार भी ठीक ठीक प्रमाण मे होते है। वह अनाज और द्विदल के उपरी सतह, सब्जी और फलो से मिलता है। रेषेयुक्त आहार से निम्नानुसार फायदा होता है।

* आहार का जत्था बढता है। कम खुराक पर पेट भरकर भोजन लेने का सतोष होता है। इससे अधिक खाया नही जा सकता। इस तरह वजन को नियन्त्रित करने मे मदद मिलती है।

* उससे कॅलरी कम ली जा सकती है। यह खून मे कॉलेस्टेरॉल

कुछेक मसाले जैसे कि हरी मिर्च, हरा धनिया, अदरक, नीबू का आहार मे प्रमाणानुसार उपयोग करके नमक का उपयोग कम किया जा सकता है। रसोई मे नमक कम डालने से आहार का प्राकृतिक स्वाद और सुगध का मजा अधिक अच्छी तरह से उठाया जा सकता है।

अन्य स्वादो की तरह नमक का स्वाद भी अपनाया गया स्वाद है।

फ्री रेडिकल्स

शरीर मे पाचनक्रिया दरम्यान फ्री रेडिकल्स उत्पन्न होते है। उनका प्रमाण आहार का प्रकार, सूर्य प्रकाश, ऍक्सरे, सिगार का धुँआ और वाहनो के धुएँ से प्रदूषित वातावरण पर आधारित है। जब रक्त मे फ्री रेडिकल्स का प्रमाण बढ जाता है, तब वे शरीर के कोषो को नुकसान पहुँचाते है, बुढापा जलदी आ जाता है, तथा हृदयरोग, कॅन्सर, फेफ़डे के रोग, मोतियाबिंद की शक्यता बढती है। वह रोग प्रतिकार शक्ति को दुर्बल बना देता है।

आहार की चरबी ओक्सिजन पूरक (ओक्सिडट) मानी जाती है। प्राणिज चरबी और 'रेडमीट' मे ओक्सिजनपूरक तत्त्वो का प्रमाण बहुत होता है। वह अधिक प्रमाण मे फ्री रेडिकल्स पैदा करता है। कार्बोहाइड्रेट युक्त कम मेद वाले शाकाहार मे ऍन्टिओक्सिडट अधिक प्रमाण मे होता है जो फ्री रेडिकल्स को दूर करने मे सहायता करता है।

बीटा केरोटीन, जिस मे से विटामिन 'ए' बनता है, विटामिन 'सी' और 'ई' एन्टी-ओक्सिडट है। उससे फ्री रेडिकल्स पैदा होने का प्रमाण कम होता है। चरबी जम जाने की (ऍथरोस्कलरोसिस) प्रक्रिया को मद करने मे ये विटामिन उपयोगी माने गये है।

करता है, जो खुराक न लिया जाय ऐसी स्थिति मे काम में आता है। शेष रही चरबी सारे शरीर मे जमा होती है, लेकिन पेट्र पर वह अधिक जम जाती है। शरीर मे जरूरत से अधिक चरबी इकट्ठा होने से सुस्ती अनुभव हो जाती है और अकर्मण्य की स्थिति पैदा हो जाती है। उससे फिर से वजन वढता है, जिससे अनेक मुश्किलें पैदा होती है।

हम सपूर्ण शाकाहार की सिफारिश करते है। विना चरवी का दूध भी प्राणिज प्रोटीन है। इसलिए उसका अधिक प्रमाण मे उपयोग भी टालना जरूरी है। जटिल कार्बोहाइड्रेट, वनस्पतिजन्य प्रोटीन (अनाज, द्विदल) हरी सब्जी और फलो का आहार होना चाहिए। सादे (तैयार विशुद्ध) कार्बोहाइड्रेट जैसे कि खॉड, गुड, शहद, इख का रस, पॉलिश किये हुए चावल, चावल से वनी चीजे (मुरमुरा, चिडवा), ग्लुकोझ आदि थोडे प्रमाण मे लेने चाहिए। उनके लहू मे तेजी से मिल जाने से इन्स्युलिन का स्राव वढता है। इस स्राव के वहुत से गैरलाभ है। उससे कॉलेस्टरॉल का उत्पादन वढता है, चरबी इकठ्ठा होती है, धमनियो की दीवार के कोषो मे वृद्धि होती है। उपरात भावात्मक तनाव के वक्त जैसे होता है, वैसे सिम्पेथेटिक नर्वस सिस्टम उत्तेजित होती है। जिस के कारण धमनियॉ सिकुडती है, प्लेटलेट्स अधिक चिकनाहट धारण करते है और धमनियॉ सकरी होने का और लहू का जम जाना विशेष बनता है।

जटिल कार्बोहाइड्रेट मे रेषे अधिक होते है। वे खून मे मद गति से मिश्रित होते है। लहू मे शर्करा की वढ-घट कम होती है। और इन्स्युलिन का स्राव भी सामान्य रहता है। इस से थोडा भोजन करने पर भी भरपेट भोजन का सतोष अनुभव किया जा सकता है।

हो वह भी वहुत महत्त्व का है। आपके आहार मे आवश्यकता से अधिक चरबी या शक्कर होगी तो लाभ होगा नही।

ध्यान से भोजन करे

हमारे प्रवृत्तिमय जीवन मे एकसाथ अनेक कार्य पूरे करने होते है। शाति से भोजन करे ऐसा शायद ही वनता है। हम अखबार पढते पढते सुवह का नाश्ता झट गले मे उतार देते है। दोपहर का खाना टेलिफोनो के आने जाने के समय मे पूरा करते है। रात्रि का भोजन टीवी देखते और बातचीत मे गूथा रह कर करते है। फलतः कितना खाया ओर स्वाद कैसा था उसका खयाल नही रहता। भोजन करते समय, और कुछ भी करने जाएँ तो, इससे हमारा ध्यान खाना खाने पर केन्द्रित होता नही है। फलस्वरूप हमे भोजन का सही आनद मिलता नही है, अधिक खाना खाया जाता है और खुराक ठीक रूप से पचता भी नही है। हम जब मन लगाकर चाव से भोजन करते है तव भोजन करने का पूरा आनद मिलता है और कितना खाया उसका होश रहता है। अधिक खाया नही जाता और वजन नियत्रण मे रहता है। भोजन करते समय मन लगाकर खानेसे होश रहता है कि अधिक चरवीयुक्त आहार से प्रमाद और थकान महसूस होगे। इससे विपरीत कम चरवीवाले और जटिल कार्वोहाइड्रेट वाले आहार से कम भोजन लेने पर भी सतोष होता है, शरीर हलका रहता है और स्फूर्ति अनुभव की जा सकती है। इससे भोजन की सही पसदगी हम कर सकते है।

हरेक सस्कृति और धर्म मे भोजन के पूर्व प्रार्थना करने की प्रथा है। प्रार्थना से चित्त शात होता है। खाना खाने मे मन लगता है। जब हम मग्न होकर भोजन करते है, तब हम उदर ही नही भरते, परतु अदर की रिक्तता को भी पाट देते है। अलगतापन की भावना से एक प्रकार के खालीपन की अनुभूति होती है। ध्यान आत्मा की खुराक है। वह भोजन का अनाद बढाता है इतना ही नही वल्कि वजन पर कावू रखने मे मददगार वनता है।

५ इच्छित वजन न घटने पर डायेटिंग से लगे रहने का उत्साह रहता नही है और डायेटिग छूट जाता है।	सरलता से वजन घटने पर उत्साह बना रहता है।
६. डायेटिग छूट जाने पर वजन तेजी से बढ़ता है कारण कि डायेटिग दरम्यान चरबी के कोषो की सख्या कम नही होती, केवल उनके कद छोटे बनते है।	डायेटिग क्वचित ही छूटता है और क्रमश· वजन घटता है।
७. बारबार डायेटिग करने और छोड देने से वजन मे बढ-घट होने पर हृदयरोग की शक्यता बढती है। (डॉ. ब्राउननील)	आहार का नया अभिगम उत्साहपूर्वक जारी रहता है।

अशुद्ध पाठोने सुधार्या छे; अने ए सुधारेला पाठ मुजब टीकानी रचना करी छे। जो के ए सुधारेला पाठवाळी मूळ २१ बत्रीशीओना श्लोकनो सळंग पाठ अलग रीते ग्रन्थान्ते आपवामां आवेल छे। टीककार स्व०पू० गुरुदेवने अर्थसंगतिमां घणी मुश्केलीओ पडी छे, तेथी संपादन कार्यमां ते मुश्केलीओ अमने पण पडी छे। अमारी मुश्केलीओनो जवाब मेळवी शकाय एम न हतो छतां अमे अमारा क्षयोपशम अनुसार यथामति आ ग्रन्थ सुधारीने प्रकाशन संस्थाने अर्पण कर्यो। ए मुजब आ ग्रन्थ प्रकशित थयेल छे, ते सौ कोई तत्त्वजिज्ञासु माटे आनंदनो विषय छे।

प्रेसनी मुश्केलीओ अपार हती एटले केटलीक अशुद्धिओ रही जवा पामी छे, ते तरफ विद्वान् वाचकवर्गनुं ध्यान खेंचीए छीए। गमे तेम पण आ महान् ग्रन्थ प्रकट थाय छे, तेने विद्वानो वांचे अने त्रुटिओ के स्खलनाओ तरफ अमारुं ध्यान दोरे तो ते धन्यवादने पात्र गणाशे। हंसचंचू ने दुग्धना न्याये स्वपी विद्वान् आत्माओने आ ग्रन्थनुं वांचन-अध्ययन-अध्यापन करवानी विनम्र भलामण करी संपादकीय वक्तव्य समाप्त करुं छु.॥ शुभं भवतु ॥

श्रीवीर सं २५०३ — श्रीनेमि-लावण्य-दक्षचरणोपासक
नेमिसं० २७ — विजयसुशीलसूरि
वि० सं० २०३३

लेता है, इनका अर्थघटन कैसा करता है, उसके ऊपर बहुत ही ज्यादा है।

डॉ. लारी दोस्सी ने 'मिनिग एण्ड मेडिसिन' (Meaning & Medicine) नामक एक किताब लिखी है। इस किताब का प्रारभ ख्यातनाम फिझि सिस्ट डेविड ब्होम के तीन ही शब्दो का उद्धरण है। Meaning is Being

यानी कि मनुष्य जीवन का आधार, उसके जीवन मे जो कुछ घटना बनती है, उसके अपने अर्थघटन पर, वह उस घटनाको किस प्रकार लेता है, उसके ऊपर है। इस अर्थघटन का महत्त्व समझाते हुए डेविड ब्होम एक सुदर बात करते है। वे लिखते है कि एक बार वे अपनी पत्नी के साथ लदन मे रात्रि के शो मे सिनेमागृह मे गए थे। शो छूटने के बाद वाहन खडे रखने की जगह पर (Parking Plot) आ कर अपनी गाडी चालू करने लगे मगर गाडी चालू नही हुई, इस पर इन्होने भूगर्भ रेलवे (Underground train) द्वारा घर जाने का विचार किया और सिनेमागृह के बाहर वाहन खडे रखने की जगह परसे स्टेशन की ओर चलते बने। मध्यरात्रि हो गई थी। रास्ता निर्जन था, इस लिए लूटे जाने का डर भी था। उन्होने चलने की रफ्तार तेज की। इतने मे पीछे से एक परछाई उनका पीछा करती हो, वैसा लगा। दोनो ने अपनी चलने की गति तेज की। परछाईं भी तेजी से पीछे आ रही हो, ऐसा लगा। अब स्टेशन बहुत नजदीक था इसलिए उन्होने चलने की गति और बढायी। हृदय की धडकन बहुत बढ गयी। बदन पर पसीना हो आया। इतने मे परछाईं बिलकुल नजदीक आ गई और 'डेविड, डेविड' ऐसी आवाज लगाकर कोई उनको बुला रहा हो ऐसा लगा।

भी हस्ति पर हो सकता है ऐसा भी ज्ञात होने लगा है। विज्ञान के मन की शक्ति से दिमाग के ज्ञानतंतु सतेज करके और स्रावो के उत्पादन द्वारा शरीर में अद्भुत परिवर्तन लाकर बायोफीडबेक (Biofeedback) और स्वसूचनो से मन की शक्ति का प्रभाव अनेक जटिल दर्दों मे सिद्ध किया है। आधुनिक उपचार मे दवा तथापि शस्त्रक्रिया के साथ शवासन ध्यान और प्रार्थना द्वारा मानसिक और आतरिक शक्ति जगानेवाली क्रियाएं भी महत्त्व की है इस दृष्टि से इन सबका निर्देश यहाँ किया गया है।

कॉरोनरी हृदयरोग के भावात्मक कारण

अलगापन

अलगापन यानी क्या वह हम बराबर समझ ले। हम जिसे तनहाई या एकातप्रियता कहते है, यह सचमुचमे अलगापन नही हे। कोई व्यक्ति एकात मे समग्र विश्व के साथ ऐक्य अनुभव कर सकता है, जब दूसरा कोई व्यक्ति मानवो की भीड मे, पारिवारिक सदस्यो, साथियो और मित्रो के वीच रहने पर भी अलगापन महसूस करे, ऐसा बन सकता है।

व्यक्ति अपने कुटुवीजनो से, समाज से और व्यवसाय मे काम करते साथियो से अलग अलग अनेक रीत से अलगापन महसूस करता है। जैसे कि स्वय सब से होशियार और सफल है, उनकी होशियारी की योग्य कद्र होती नही, व्यवसाय मे से निवृत्त होने के बाद उन्हे इच्छित मान नही मिलता, ऐसा मानना, सब उनका कहा नही मानते, सहकार नही देते, उनकी अवहेलना करते है ऐसा लगना, हर तरफ से अन्याय होता हो ऐसा भाव पैदा होना, सतानो के साथ पीढ़ी के अतर के कारण अच्छा मेल न होना, ये सभी अलगापन के ही प्रकार है। सारी दुनिया नैतिक मूल्य भूल गई है, किसी पर भी विश्वास रखा नही जाता ऐसे विचारो मे अनेक बार डूब जाने से भी अलगापन की भावना का अनुभव होता है।

बात कही। तनिक सोचो: ईर्ष्या, स्पर्धा, क्रोध, द्वेष, तिरस्कार इन सब दुर्गुणो का मूल क्या? सामने वाला व्यक्ति आप से भिन्न है और आप उन से अलग है, ऐसी अलगपन की भावना मे से ऊपर निर्देशित दुर्गुण उत्पन्न होते है।

इसे समझने एक मरीज के प्रतिभाव की छनाबीन करे। मरीज ने कहा, ''डॉक्टर, युनिवर्सल हीलिग का कार्यक्रम आपने चालू किया (२-१०-'९१)। उस दिन आपका पहला वक्तव्य सुनकर मैने आप से कहा था कि मुझे आज जडीबूटी प्राप्त हुई। मिताहारी, शाकाहारी, सप्रमाण वजन और मुझे कोई भी बूरी आदत नही। खून मे कोलेस्टेरोल का प्रमाण नोर्मल। डायाबिटीस या ब्लडप्रेशर नही, वशपरपरागत झुकाव नही, फिर भी मुझे एटेक आया था। उसका कारण कोई मुझे समझा नही सका। लेकिन आपने अपने वक्तव्य मे जब इन लक्षणो की बात कही; स्वभाव की उग्रता, निरी स्वार्थवृत्ति और तिरस्कारभरी टीकात्मक वृत्ति, तब मुझे अपने अदर की खोज करने का मन हुआ। मै कितना दुराग्रही था! मै जो करता या कहता था वही सच और इसी तरह मेरे परिवार के लोग और मित्र वर्ताव करे, ऐसा आग्रह रखने वाला, अनजाने मे ही अपने आपका नुकसान कर बैठा। चार वर्ष मे बहुत सीखा। प्रतिदिन पचीस के बदले सिर्फ दो रुपये की दवा लेकर पूरी तरह से स्वस्थ जीवन जी रहा हूँ। लेकिन कल मेरे एक मित्र का बेटा अमरिका से आया। कितना परिश्रम कर के वह अपना जीवन सफल बना सका, उस बात को सुन कर मै बहुत गर्वान्वित हुआ। लेकिन उनके जाने के बाद मुझे विचार आया कि उसी उम्र के मेरे बेटे मेरी सपत्ति के कारण मेरी छत्रछाया मे कैसा प्रमादी जीवन गुजारते है। ये लोग मेरे मित्र के

से कुढन रखकर मन मसोसकर बैठे रहना या सहन करना यह सही सहनशक्ति नही है, परतु एक प्रकार का दबा हुआ गुस्सा ही है। इस प्रकार की सहनशक्ति का भी हृदय पर आक्रमक क्रोध जेसा ही बुरा असर होता है।

बैरवृत्ति के अनेक कारण हो सकते है। बच्चे की परवरिश दरमियान मा-बाप की उष्मा न मिलने पर वह असलामती का भाव अनुभव करता है। बचपन मे परिवार के अन्य सदस्यो की ओर से और अभ्यासकाल दरमियान सहाध्यायीओ और शिक्षको की ओर से छोटे बडे अन्याय के अनुभव हुए हो, वैसा बालक बडा होने पर सारे विश्व को कटु निगाह से देखता है और सारे विश्व के साथ द्वेष वृत्ति बाधता है। ऐसी बैरवृत्ति, स्वभाव की उग्रता, छोटी छोटी बातो में गुस्सा, स्वार्थवृत्ति और टीकात्मक रुख मे परिणित होती है।

ऐसे स्वभाव से व्यक्ति समूह मे सभी को तिरस्कारभरी दृष्टि से देखकर अलगापन महसूस करता है। यह अलगापन उसे अदर से खाता रहता है। इसका असर कम करने के लिए वह तमाकू, सिगार या शराब का सहारा भी लेता है, जो हृदयरोग की शक्यता मे बढोतरी करता है।

स्वभाव की उग्रता की कसौटी

आपका स्वभाव कितना उग्र है. उसे जानने के लिए नीचे के प्रत्येक प्रश्नो के उत्तर दे। सशोधन ग्या बताता है कि (१) टीकात्मक भाव (२) क्रोध (३) मताग्रहीपना. आवेश, आक्रमकता ये तीन लक्षण स्वभाव की उग्रता का प्रमाण बनाते है।

मे उग्रता का प्रमाण ऊँचा होगा।

स्वार्थवृत्ति

इस प्रकार की वृत्ति विन सलामती (insecurity)की भावना मे से जन्म लेती है। व्यक्ति को अपने सुख के वारे मे विनसुरक्षा लगने पर, वह और किसी का विचार न करते, प्रति पक्ष का अहित हो उसकी तनिक भी परवाह किये वगैर, स्वार्थ की झखना करता हो, तो ऐसी वृत्ति स्वार्थ वृत्ति कहलाती है और उस से भी हृदय को नुकसान पहुँचता है।

टीकात्मक मनोभाव (दोष दृष्टि)

व्यक्ति जब प्रत्येक वस्तुओ मे खामी या दोष खोजे, सामान्य दृष्टि से अच्छी वस्तुओ मे भी कुछ दोष देखे, उसे दोष दृष्टि कही जाती है। जीवन मे विश्वास या श्रद्धा न रहने पर व्यक्ति का दृष्टिविदु ही कलुषित हो जाने पर ऐसा वनता है।

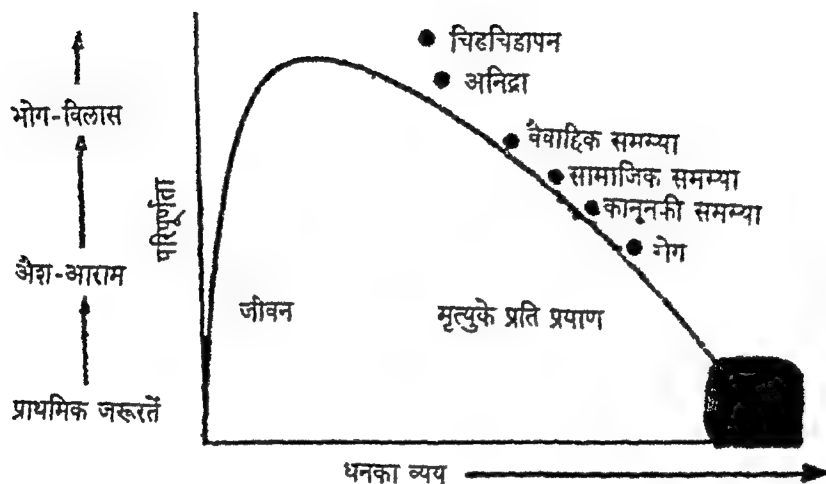
व्यावसायिक तनाव

यौवनावस्था मे होने वाले कॉरोनरी हृदयरोग मे व्यावसायिक तनाव बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान देता है, ऐसा अनेक अध्ययन पर से मालूम पडा है। अपने काम की कोई कद्र नही होती ऐसे लगातार भाव, लगातार अन्याय होता हो ऐसा भाव, अपने उपरि अधिकारी के साथ लगातार सघर्ष, मर्यादा से अधिक आकाक्षा और ईर्ष्यालु स्वभाव तथा कीनाकशी यौवनावस्था मे होते मानसिक तनाव के मुख्य कारण है।

धधे या व्यवसाय मे सदैव रहा करती आर्थिक तगी तथा कर्मचारी गण के प्रश्न भी तनाव पैदा करते है।

३५ वर्षीय एक बहुत ही सस्कारी, चारित्र्यवान, बॅन्क अधिकारी पिछले पद्रह वर्ष से श्री अरविद और माताजी के आध्यात्मिक प्रभाव

धन और सुख का आलेख



यह ग्राफ धन से प्राप्त होने वाली सिद्धियों और विपदाओ को निर्देशित करता है। सर्व प्रथम जीवन की जरूरतो को धन पूरा करता है। अस्तित्व के लिए यह जरूरी है। इससे अधिक सपत्ति सुखसुविधा बढाती है। यह भी जरूरी है। उससे भी अधिक धन आने पर जीवन मे ऐशोआराम और विलास के साधन बढते है। अब ऐशोआराम की इस सीमा को भी पार करके जब अधिक धन खर्च किया जाता है, तब वह धन अधिक सुख खरीद सकता

तनाव प्रबंध

उदरीय श्वसन

उदरीय श्वसन, शवासन और ध्यान ये वीटा ब्लोकर दवाइयाँ और रक्त को पतला करनेवाली ऐस्पिरीन जैसा असर करते है। यहाँ दवाइयो के वदले मे इसका उपयोग करने की हिमायत नही है। परन्तु दवाइयो की मात्रा कम की जा सके, उनका विपरीत असर कम किया जा सके और दवाइयो को अधिक असरकारक वनाया जा सके इसलिए इनका उपयोग दवाई की तरह ही नियमित करना है। शवासन और ध्यान सिर्फ थोडे समय के लिए ५ से १० मिनट दिन मे दो या तीन बार जैसे दवाई लेते है, उसी तरह करना है। मगर इसमे नियमितता होनी चाहिए। जैसे दवा वद करने पर इसका असर कम होता है और तकलीफ फिर से खडी होती है। उसी तरह अगर शवासन और ध्यान भी बेकायदा किया जाये तो वैसा ही बनता है।

उदरीय श्वसन भी अद्भुत ढग से अनुकपी तत्र को (sympathetic system) मद कर के वीटा ब्लोकर की जरूरत की पूर्ति करता है। इस तरह शवासन, ध्यान और उदरीय श्वसन मेडिकल चिकित्सा के प्रिस्क्रिप्शन का हिस्सा बना रहे यह बहुत जरूरी है।

तनाव प्रवध मे उदरीय श्वसन का कार्य बहुत महत्त्व का है। पुख्त वय मे उदरीय श्वसन लगभग विस्मृत हो जाता है। इस प्रकार

यह क्रिया दिवस दरम्यान किसी भी समय की जा सकती है। पत्येक समय पर पॉच से छ· दफा उदरीय श्वसन करने से उसका फायदा महसूस किया जा सकता है। अगर दो से तीन मिनट किया जाय तो उससे बहुत लाभ होता है। आवेग मे आये मन को शात करने उदरीय श्वसन जैसी सरल और असरकारक क्रिया और कोई नही है।

शवासन और ध्यान

शवासन यह सर्व योगासनो का राजा माना जाता है। कारण, अन्य योगासन शरीर को कुशल और तदुरुस्त बनाते हैं, जब कि शवासन मन को शात कर के व्यक्ति की आतरिक शक्ति को जाग्रत करता है, आतरिक ताकत की अनुभूति करवाता है। युनिवर्सल हीलिग के कार्यक्रम मे सिखाई जाती सरल कसरतो (तगकरण और शिथिलीकरण) से शारीरिक लाभ होता होगा लेकिन वह बहुत महत्त्व का नही है, क्योकि युनिवर्सल हीलिग के कार्यक्रम मे व्यायाम की महिमा नही है। कोई व्यक्ति किसी भी प्रकार की कसरत न करे तो कोई मुश्किल नहीं। अगर डॉक्टर ने कसरत करने की मनाही फरमाई हो तो चाहे वह वैसा करे। यहॉ कसरत का आग्रह थोडा सा भी नही है। किसी प्रकार की कसरत करते समय जो कुछ विचार आये उस पर ध्यान केन्द्रित न करके, व्यक्ति अपना ध्यान जो स्नायु तग होते है उन पर लाये और स्नायुओ के शिथिल होने पर उस शिथिलता का अनुभव करे, वह जरूरी है। अर्थात् वर्तमान क्षण मे जो क्रिया हुई है, उस पर अपने ध्यान को केन्द्रित करना है। ऐसा करने से शवासन आसान बनता है।

व्यक्ति की निसबत अनपढ व्यक्ति आसानी से ध्यान कर सकता है।

इस परिवर्तनशील जगत मे एक ऐसा तत्त्व छिपा हुआ है कि जो परिवर्तनशील नही है। जो समय और अवकाश के बधन से मुक्त है। मामान्य तौर पर हमे ऐसा ही खयाल आता है कि हम शरीर और मन के आधीन है। हमारा पूरा जीवन शरीर और मन के व्यापार मे व्यस्त रहता है। वैज्ञानिक हकीकत यह है कि हम केवल शरीर और मन नही है, शरीर और मन के उपरात हम मे एक ऐसा आतरिक तत्त्व पडा है कि जिस की शक्ति अमाप है। सामान्य अवस्था मे यह आतरिक तत्त्व की हमे पहचान होती नही है। ध्यान हमे यह आतरिक तत्त्व का परिचय करवाता है। ध्यान मे जब इस आतरिक तत्त्व की पहचान होती है, तब हमारे मन और शरीर पर एक नया प्रकाश, एक नयी शक्ति का सचार होता है। यह सचार सभी शारीरिक क्रियाओ को तदुरुस्ती की ओर ले जाता है और रोगप्रतिकारक शक्ति को बढाता है।

क्रोध, ईर्ष्या, वेरवृत्ति कोरोनरी धमनियो को सिकुड देते है। खून मे एच.डी एल (हाइ डेन्सीटी लायपोप्रोटिन, अच्छा कोलेस्टेरोल) का प्रमाण घटाकर कोरोनरी धमनी मे कोलेस्टेरोल जमाव की प्रक्रिया को गति देता है। लहू के प्लेटलेट्स घटको की चिकनाहट मे बढावा कर के लहू को गाढा बनाते है। इतना ही नही परतु लहू मे एड्रीनलीन (Adrenaline) की मात्रा बढाकर हृदय के स्नायु की ऑक्सिजन की आवश्यकता मे बढावा करता है। इस प्रकार एक पक्ष मे हृदय के स्नायुओ को मिलते लहू के प्रमाण मे कमी होती है और दूसरे पक्ष मे हृदय के स्नायु की ऑक्सिजनयुक्त लहू की आवश्यकता मे बढावा होता है और हृदय को नुकसान पहुँचता है।

हवे ज्यारे आ द्वात्रिंशिकाओ परनी टीका प्रसिद्ध थाय छे त्यारे ए काचुं काम ज प्रस्तुत करायुं छे के आ०विजयलावण्यसूरिजीए तेने योग्य संमार्जन पण कर्युं हतुं ए जाणवामां आव्युं नथी पण टीका जोतां एवुं लागतुं नथी ।

मारा आ लखाणमां महद् अंशे आ० सिद्धसेननो परिचय, खास तो एमनी कृतिओना उपलक्षमां आपवा धार्यो छे ।

आ० सिद्धसेन विशे आटलां वर्षो बाद लखवानो अवसर मळ्यो ए मारा माटे आनंद तथा गौरवनी वात छे । आवो अवसर प्राप्त कराववा माटे हुं पं० श्रीअम्बालालभाई प्रे० शाहनो ऋणी छुं । मनमां अभिलाषा तो छे ज के प्रत्येक द्वात्रिंशिका पर एक स्वतंत्र ग्रंथ तैयार करवानुं सद्भाग्य मळे तो ज आ०सिद्धसेननो पूर्ण अभ्यास थई शके । अहीं तो दिङ्मात्र दर्शन कराव्युं छे, विद्वानोने ए संतर्पक न पण लागे तो क्षमाप्रार्थी छुं । आ प्रकारना लखाणनी एक मर्यादा होय छे ।

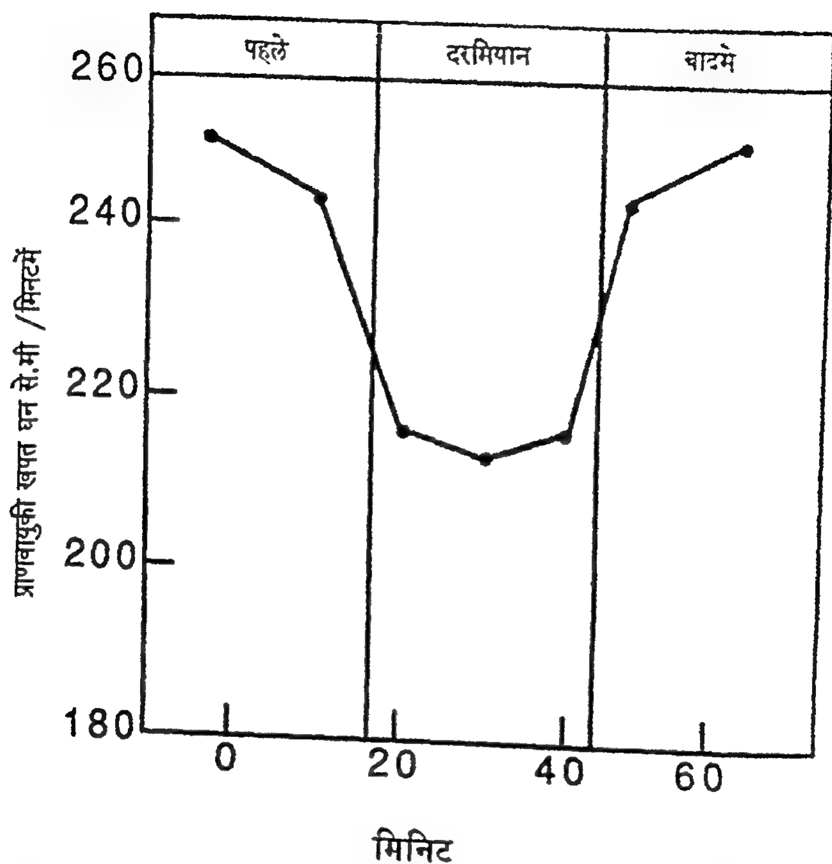
जीवन–

आ० सिद्धसेनना जीवनने आलोकित करती समकालीन कही शकाय तेवी कोई सामग्री उपलब्ध थती नथी । आपणे मुख्यत्वे प्रबन्धो पर आधार राखवो पडे छे । तेमां आ०प्रभाचंद्रकृत 'प्रभावकचरित' मेरुतुंगाचार्यकृत 'प्रबन्धचिन्तामणि' अने आ० राजशेखर कृत 'प्रबन्धकोश' अथवा 'चतुर्विंशतिप्रबन्ध' मुख्य छे, जेनी रचना वि०सं० १३३४, १३६१ अने १४०५ मां अनुक्रमे थई हती ।

मदद से व्यक्ति अपने शरीर मे, दूर के स्वजन के शरीर में और सयोगो मे अनुकूल परिवर्तन कर सकता है। हमारे युनिवर्सल हीलिग के कार्यक्रम मे बहुत से दर्दीओ को एन्जाइना के दर्द मे इस प्रयोग से बहुत राहत मिली है। व्यक्ति अपने से हुई किसी भूल के लिए हमेशा स्वय को दोषित मानता हो तो उस के लिए स्वय को माफी देकर और किसी की ओर से उसे अन्याय, चोट कि नुकसान हुआ हो तो वैसे व्यक्ति को मुआफ कर के प्रत्यक्षीकरण के उपयोग से हृदय रोग को ठीक किया जा सकता है। माफ करना आसान नही है। हमारे कार्यक्रम मे भाग लेनेवाले मरीजो को अधिक से अधिक मुश्किल यही लगता है और वह स्वाभाविक है। लेकिन शवासन और ध्यान के समूह मे किये गये अभ्यास और समूह सवाद से व्यक्ति मे माफी देने की हिमत आती है। इसके अतिरिक्त प्रत्यक्षीकरण की इस क्रिया मे, जब आप अपने दोष के लिए स्वय को माफ करते हो तब आप दोष की भावना के बोझ से मुक्त हो जाते है। इस से जो गलत किया है वह मिट जाता नही है। लेकिन फिर से ऐसा न करने का सकल्प जरूर किया जाता है। उसी ही प्रकार आप को नुकसान पहुँचाने वाले व्यक्ति को माफ कर के, उस व्यक्ति के प्रति तिरस्कार और क्रोध की भावना मे से आप मुक्त हो जाते है, लेकिन तब उस व्यक्ति का अपराध मिट जाता नही है।

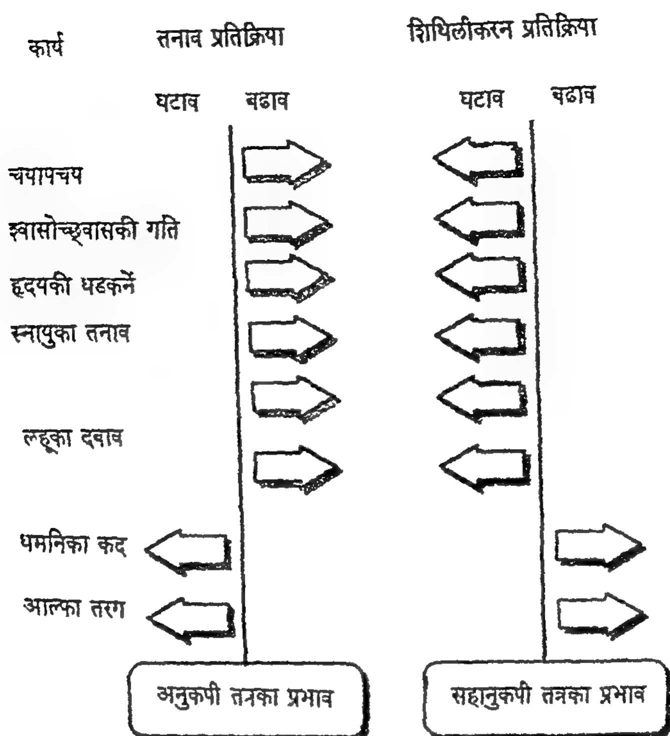
डॉ. डीन ओर्निश के कार्यक्रम मे भाग लेनेवाले एक निवृत्त लश्करी अमलदारने ऐसा कहा कि ध्यान और प्रत्यक्षीकरण मे यह क्षमा करने की प्रक्रिया, युद्ध मे उन्हो ने इस्तेमाल की गई अनेक प्रकार की बदूको से भी अधिक शक्तिशाली है।

ध्यान और चयापचय की क्रिया



शरीर कितने प्रमाण में ऑक्सिजन उपयोग मे लेता है उस के द्वारा चयापचय की क्रिया का दर जाना जाता है। यह दर शरीर की जैवरासायणिक (bio-chemical) प्रक्रिया का नाप है। यह आलेख बताता है कि ध्यान से पहले ऑक्सिजन की जो आवश्यकता होती हैं वह ध्यान दरमियान बहुत घट जाती है और ध्यान मे से बाहर आने के बाद थोडे समय मे पुन॰ बढ जाती है।

तनाव और शिथिलीकरण की तुलना



अनुकपी तत्र और सहानुकपी तत्र की शरीर पर होनेवाली असरो की तुलना की गई है।

तनाव के समय अनुकपी तत्र कार्यरत होता है, जो शरीर पर होनेवाला छीज बढाता है, जब शिथिलीकरण सहानुकपी तत्र को सतेज करता है, जो शरीर मे स्वास्थ्यप्रद परिवर्तन लाता है।

शिथिलीकरण दरम्यान साँस की क्रिया और हृदय की धडकन मद पडते है, स्नायु तनाव रक्त का दबाव कम होता है, दिमाग मे आल्फा तरग बढते है और खून मे लेकटिक एसिड की मात्रा घटती है।

यिन और येन प्रकृति मे फर्क

कक्षा	यिन	येन
उत्तेजना (Arousal)	शिथिलीकरण	तनाव
स्नायविक तत्र (Nervous system)	सहानुकपी (Parasympathetic)	अनुकपी (Sympathetic)
विकास	समतोल	असमतोल
चयापचय (Metabolism)	कम होता है	वढता है
जाति	स्त्री	पुरुष
क्रियाशक्ति	ग्रहणशील	सक्रिय
आत्मलक्षीता	आत्मलक्षी	हेतुलक्षी
अनुभव	अनुभवजन्य	प्रयोगात्मक
दिमाग का हिस्सा	दाहिना दिमाग	वायॉ दिमाग
चेतना	मनसातीत	क्षुब्ध
	निद्रा	जागृति
दिमागी तरग	आल्फा तरग	वीटा तरग
मानसिक भाव	अत प्रेरणात्मक	विश्लेषणात्मक
	पवित्र	ऐहिक
	आध्यात्मिक	भौतिक
	रहस्य	कौशल्य
	होना	बनना
	पूर्ण	आशिक
	गुणवत्ता	जत्था

क्रोनिक इन्जाइना

यकायक छाती मे पीडा होने पर मृत्यु होने की घटना बहुत ही सामान्य है। कोरोनरी हृदयरोग का दर्दी कई बार छाती मे पीडा का अनुभव करता है, जो थोडा आराम लेने या जीभ के नीचे नाईट्रेट की गोली रखने पर मिट जाता है। छाती मे प्रथम बार उठती ऍन्जाइना की पीडा, बार बार आराम करते समय भी होनेवाली पीडा शायद हृदयरोग के हमले मे परिणित होती है, इसलिए इसकी घनिष्ठ चिकित्सा करनी होगी। लेकिन हमेश का, खास असर न करता, कुछ अधिक शारीरिक या मानसिक श्रम पडने से होती पीडा, आराम करने से और जीभ के नीचे गोली रखने से तुरत मिटनेवाली पीडा, अधिकतर यकायक मृत्यु मे या हृदयरोग के हमले मे परिणित नही होता। ऐसी पीडा के साथ भी व्यक्ति बहुत लबा और उपयोगी जीवन जी सकता है। यह पीडा जब व्यक्ति को रोजमर्रा की जिदगी जीने के लिए रोकती है, तब उसे एन्जियोप्लास्टी (Angioplasty) या बायपास सर्जरी करवाने का सूचित किया जाना चाहिये।

आज से दोसौ साल पहले ज्हॉन हटर नामक सर्जन स्वय क्रोनिक एन्जाइना के दर्द से पीडित थे। उस समय रूमाल मे नाइट्रेट की कॅप्स्यूल तोडकर उसकी भॉप नाक द्वारा लेने से उनकी ऐन्जाइना की पीडा का शमन हो जाती थी। ज्हॉन हटर ऍन्जाइना के दर्द

तक कार्यक्षम जीवन जीते है, यह हकीकत प्रत्येक दर्दी को ठीक तरह से समझनी चाहिए। इस रोग मे कभी कभी अचानक मृत्यु होती है, लेकिन मृत्यु का अर्थहीन भय रखने से और भयपूर्वक सावधानी रखने से मृत्यु को रोका नही जा सकता है। इससे विपरीत, विश्वासपूर्वक निष्णात की निगरानी मे योग्य उपचार जारी रख कर अधिकतर दर्दी वहुत अच्छा जीवन विता सकते है और ऍटेक के पूर्व जैसा जीते थे, वैसा जीवन जी सकते है। इस हकीकत को सामने रखकर डॉक्टर दर्दी को मार्गदर्शन देकर भयमुक्त करे, तो वहुत अच्छे परिणाम आ सकते हैं, ऐसी मेरी दृढ मान्यता है। इन सूचनो मे रोग के प्रति असवधानी वरतनेकी या विलकुल लापरवाह वनने की कोई सलाह नही है।

(३) वैज्ञानिक सत्य तो यह है कि यकायक धमनी मे रक्त का गट्ठा जम जाने से होता हृदयरोग का हमला, जो वहुत ही यानी ८० से ९५ प्रतिशत अवरोध युक्त है, उन धमनियो मे नही होता परतु जो पचास प्रतिशत या इससे कम अवरोधयुक्त है उन मे होता है।

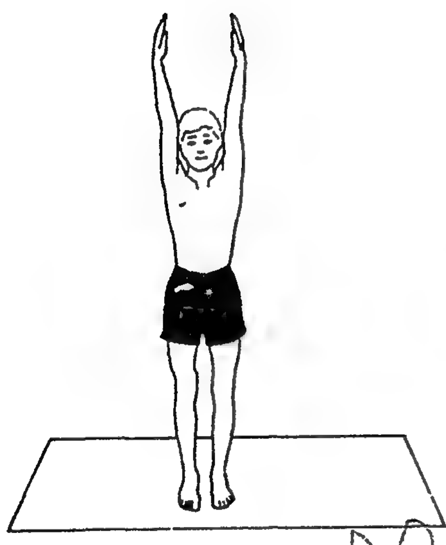
(४) बहुत ही अवरोधयुक्त धमनियॉ धीरे धीरे १०० प्रतिशत अवरोधयुक्त हो जाये तो भी दर्दी को कोई तकलीफ नही होती। कारण कि अवरोधयुक्त धमनी के इर्दगिर्द नयी धमनियॉ प्रस्फुटित होकर, रक्त का परिभ्रमण जारी रखती है। इसको कोलेटरल सर्क्युलेशन कहते है।

(५) पीडा न होती हो, फिर भी धमनी मे प्रवाह कम हुआ हो, ऐसे चिह्न होल्टर मोनीटर द्वारा चौवीस घण्टे तक लिए कार्डियोग्राम मे मालूम पड सकते है उस विषय मे भी एक अभ्यास मे ऐसा समझ मे आया है कि इस प्रकार का पीडारहित ऍन्जाईना (साइलन्ट इस्चिमिया) वास्तव मे हृदय को हानि पहुँचाता नही है। इससे विपरीत, ऐसे किस्सो मे रक्त कम मिलने की स्थिति से हृदय के स्नायु अभ्यस्त हो जाते है। इसलिए भविष्य मे अगर रक्त की रसद यकायक बहुत कम हो जाय तो हृदय इसको अच्छी तरह सह लेता है इसे 'इस्चिमिक कन्डिशनिग' के नाते पहचाना जाता है।

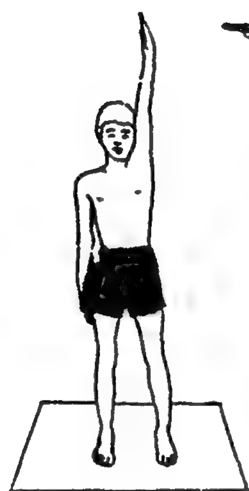
(६) जिस की मुख्य वॉयी धमनी बहुत ही अवरोधयुक्त हो, और एन्जाईना असह्य हो, ऐसे दर्दी को सर्जरी का सहारा लेना चाहिए। हालॉकि कुछ दर्दीओ मे बॉयी मुख्य धमनी अवरोधयुक्त वनी होने पर भी अधिक ऍन्जाईना न हो, और सर्जरी न करवाये तो उन्हे हृदयरोग का हमला होने की और मृत्यु की सभावना १.३

तंगकरण और शिथिलीकरण

१. सीधा लेकिन शिथिल होकर खडे रहो। पैर थोडे खुले रखिये। दोनो हाथो को सीधे रखकर सामने से आहिस्ता आहिस्ता सिर के पास लाइये। ऊपर थोडा खीचकर शिथिल करते हुए नीचे लाइये।



(१)



(२)

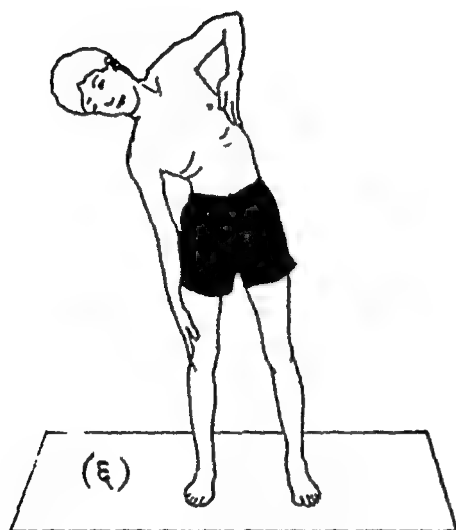


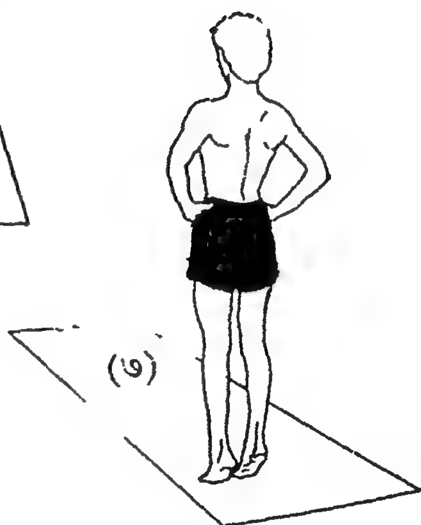
(३)

२ दाहिने हाथ को बाजू मे सीधा रख सिर के पास लाइये। ऊपर की ओर थोडा खीचे। हाथ सीधा रखकर शरीर के ऊपर के हिस्से को जितना आरामप्रद रीति से मोड सके उतना वायी तरफ मोडे। शिथिल होने पर शरीर को सीधा करते हुए हाथ को नीचे लाये।

३. वाये हाथ को भी उसी प्रकार करे।

६. वायाँ हाथ बगल की ओर खीचते हुए कमर से दाहिनी ओर मोडते जाइए। दाहिना हाथ सीधा रखकर घूटने तक ले जाइए। शिथिल होने पर बाये हाथ को नीचे लाये। उसी प्रकार दाहिने हाथ से करे।



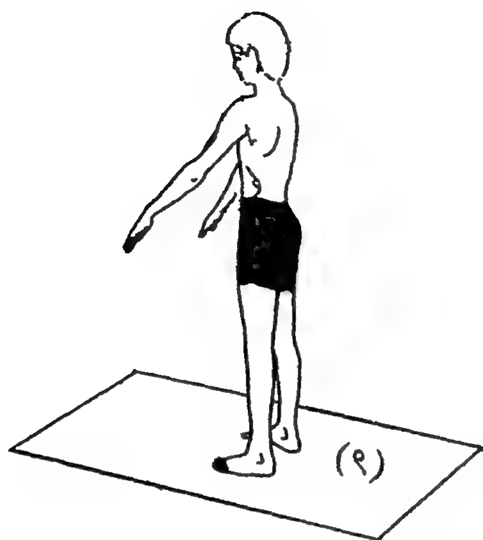


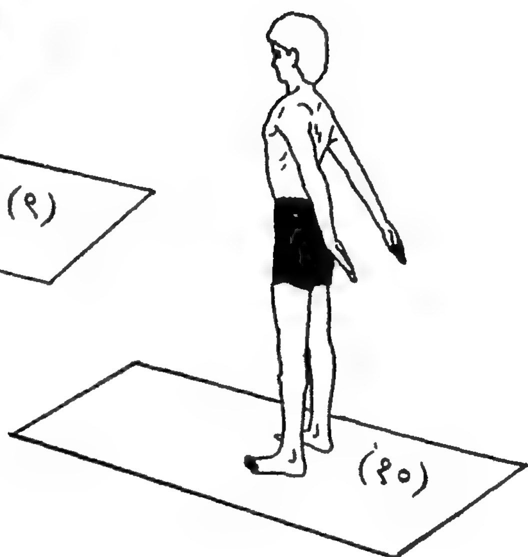
७ दोनो हाथ कमर पर रखे। आहिस्ता आहिस्ता पैर की अगुलियो पर खडे रहकर शरीर को ऊँचा करे। दोनो पैरो के पीछे के हिस्से के स्नायुओ के खीचाव की अनुभूति करे। शिथिल होने पर पैर की एडी को नीचे लाये।

राजसभा केवी रीते शोभावी, तेनी वीगतो पण प्रबन्धग्रन्थोमांथी मळे छे। चित्रकूटमांथी एमने चमत्कारिक रीते एक स्तंभमांथी विद्याओ प्राप्त थई, जेनो उपयोग ए करमारना राजा देवपालना लाभार्थे करी शक्या। आ० सिद्धसेने मंत्रविद्याना बळथी एक सेना नीपजावी, तेना सामर्थ्यथी देवपाल शत्रु राजा पर विजय मेळवी शक्यो। आ चमत्कारी घटनाने कारणे एमनुं नाम 'सिद्ध-सेन' पड्युं। नामनुं सार्थक्य दर्शावनारी भारतीय परंपरा अहीं पण जळवाई छे।

एक समये आ० सिद्धसेने संघ समक्ष पोतानी भावना प्रगट करी, आगमग्रन्थोने प्राकृतमांथी संस्कृतमां रूपांतर करवानी। आने कारणे संघे एमने प्रायश्चित्त आप्युं ने संघ बहार कर्या। बार वर्ष सुधी आ० सिद्धसेनने ज्यांत्यां भटकवुं पड्युं। समय पूरो थतां एमणे उज्जैनना कुडंगेश्वरना शिवमंदिरमां एक चमत्कार कर्यो। शिवलिंगमांथी राजा विक्रमादित्य समक्ष पार्श्वनाथ भ० प्रगट थया। 'द्वात्रिंशत् द्वात्रिंशिका' द्वारा आ बन्युं। केटलाक बीजा उल्लेखो अनुसार आ० सिद्धसेने 'कल्याणमंदिर' स्तोत्र गायुं हतुं। आ चमत्कारथी विक्रमादित्य राजा घणो अभिभूत थयो अने एणे जैनधर्म स्वीकार्यो। आ० सिद्धसेने एनी पासे एक जैनमंदिर बंधाव्युं।

आ० सिद्धसेननी जीवनकथामां अनेक मुद्दाओ अनिश्चित रहे छे। ए उत्तर भारतना हता के दक्षिणना? तेमना गुरुनुं नाम आ०

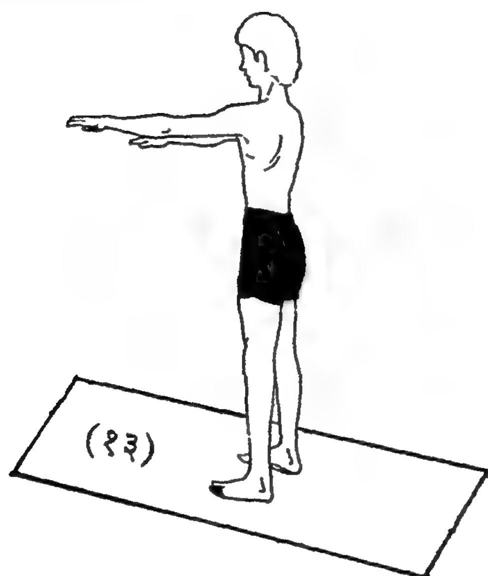




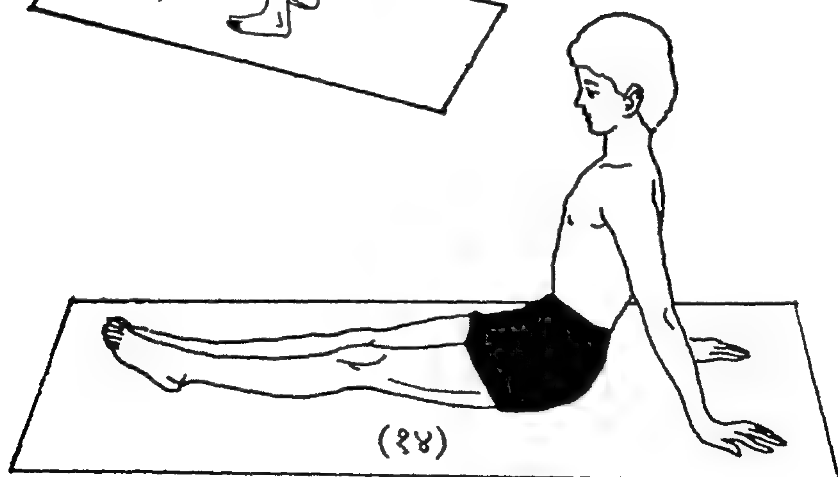
९. चाइनीझ स्वीसो (SWISSO) हाथ को झुलाना। दोनों पैर कंधे की लाइन मे रहे उस प्रकार खुले रखे। नितंब के स्नायुओ को थोडा खीचे। कमर के ऊपर का भाग ढीला कर के, शरीर का पूरा वज़न कमर से नीचे पैर पर लेने का प्रयत्न करे। दोनो हाथ कंधे से ढीला कर के आगे पीछे झुलाये।

१०. दोनों हाथ पीछे जाये तब थोडा दबाव देकर झुला खाते ले आये। थोडी देर इस प्रकार करे।

१३. दोनो हाथ आगे लम्बे कर के पैर की एडी ऊँची कर के अगुलियो पर वजन रखकर धीरे धीरे बैठ जाइये। दोनो पैर लम्बे कर के जमीन पर बैठ जाइये। दोनो हथेलियाँ शरीर के पीछे ले जाकर जमीन का आधार लेकर बैठ जाइये।

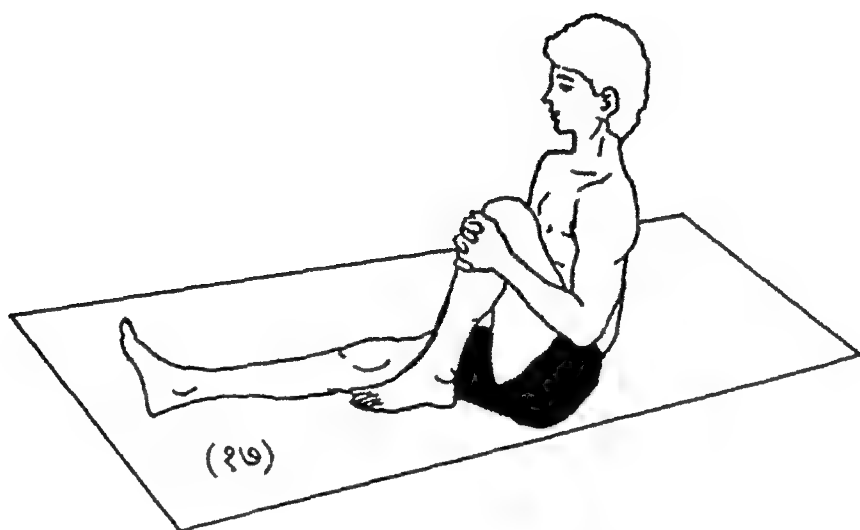


(१३)



(१४)

१४ दोनो पैर झुकाकर पंजे को टखनों से बाहर की ओर खींचे। शिथिल करते हुए पंजे और पैर की उँगलियो को पहले की स्थिति मे लाये।

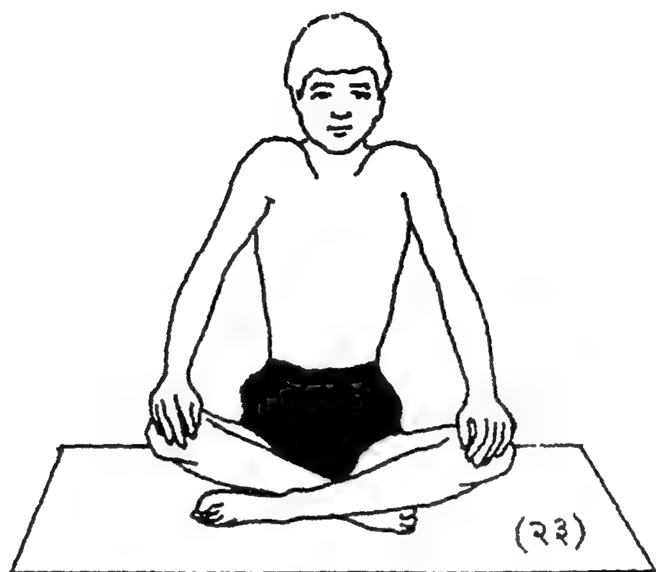


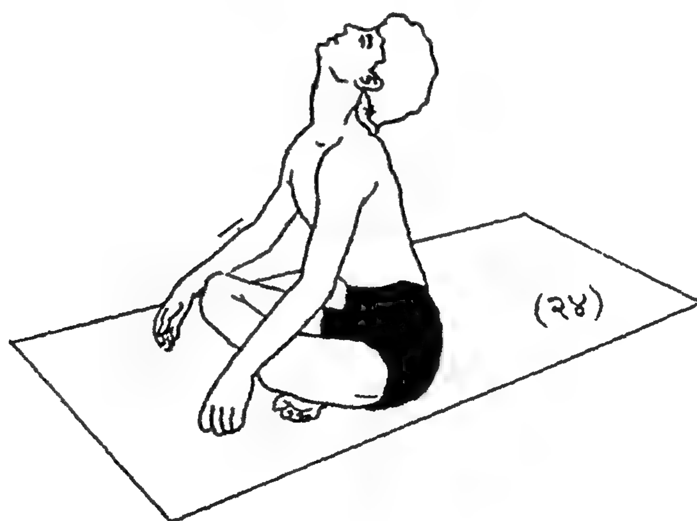
१७. दोनो पैर सीधे रखे बायॉ पैर टखने से मोड़े। दोनो हाथ से टखना पकडकर छाती के साथ पैर को दबाये। जिस से पैर का पजा जमीन से करीब एक-दो इंच अद्धर होगा। अब शिथिल कर के हाथ की पकड छोडकर पैर सीधा कर दे। उसी प्रकार दाये पैर से करे।



२०. दोनो हाथ की मुठ्ठी बनाकर कलाई मे से घडी की दिशा मे गोल गोल घुमावे। बाद मे विपरीत दिशा मे घुमाये।

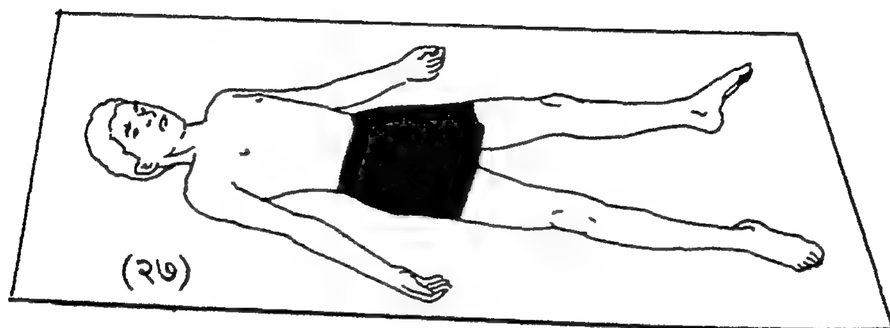
२३. दोनो कंधो को ऊपर की ओर खीचकर शिथिल बनाकर नीचे लाये।

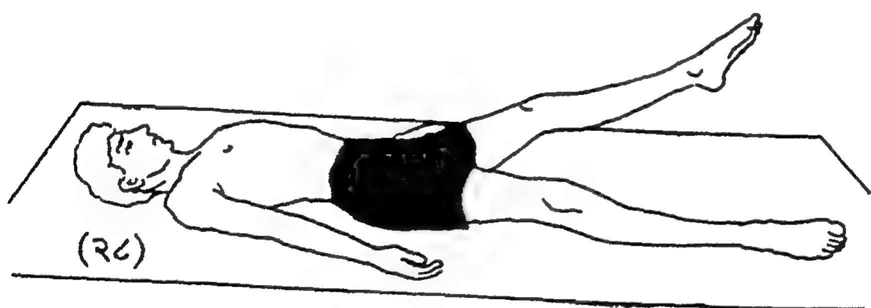




२४ गरदन को पीछे की ओर मोडें। पीछे थोडा दबाव देकर शिथिल कर के आगे की ओर मोडें।

२७. दोनो पैरो के पजो पर आप अपना ध्यान केन्द्रित करे। दोनो पैरो की उँगलियो को जमीन की तरफ मोडे। वाद मे शिथिल कर के उन को सीधा कर के उसी स्थिति मे पडा रहने दे।

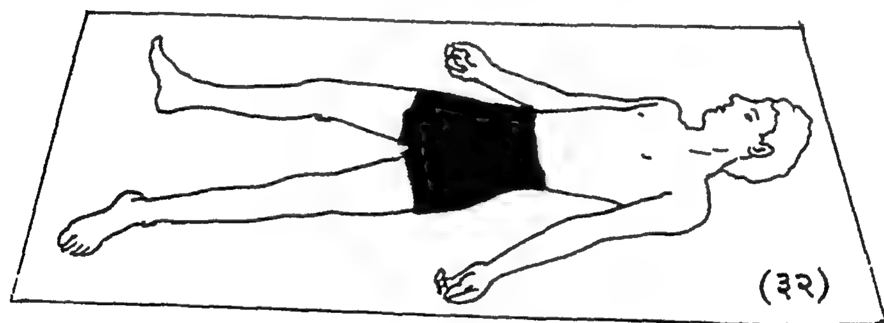




२८ वायें पैर के स्नायुओ को अगूठे से नितव तक खीचे। पैर जमीन से थोड़ा ऊँचा उठेगा। शिथिल करने पर पैर अपने आप जमीन पर आयेगा। अव वायाँ पैर पडा रहने दे। दाहिने पैर को भी उसी प्रकार करे।

३१. वायें हाथ की मूठी करे और पजे से कधे तक के स्नायुओं को खीचे। हाथ जमीन से थोडा ऊँचा उठेगा। शिथिल करने पर हाथ अपने आप जमीन पर आयेगा। इसी प्रकार दाये हाथ से करे।


(३१)


(३२)

३२ मानो आप की गरदन को पकडकर कोई बाये से दाये और दाये से बाये धीरे से घुमाता है, वैसे घूमने दे। इस के बाद आप को जो स्थिति अनुकूल आये उसी स्थिति मे सिर पडा रहने दे।

प्रतिभाव

* श्री सुबोध एम. शाह, ६१ वर्ष, व्यापारी सद्गृहस्थ। १९८७ मे हृदयरोग का हमला हुआ था। बाद मे उनको बारबार एन्जाइनाका दर्द रहता था। उसका प्रमाण २ ग्रेड से ३ ग्रेड तक था। ता. २४-५-१९८९ के दिन लिया ई.जी.सी. कार्डियोग्राम खामीयुक्त था। आगे जॉच करवाने के लिए उनको सलाह दी गई थी। लेकिन ऐसा न करते दवाइयो की चिकित्सा जारी रखी। फरवरी १९९२ मे डॉ. कापडिया का सपर्क किया। उन्हो ने एन्जियोग्राफी करने की सलाह दी लेकिन वैसा न करते फरवरी '९२ मे प्रोग्राम मे जुड गये। प्रथम ही मास मे उनको अपने मे सभी तरह से उल्लेखनीय सुधार मालूम पडा। उनके ही शब्दो मे, "अब मुझे बिना दवाई प्राकृतिक नीद आती है। पहले मुझे दिन मे २५ कप चाय पीने की आदत थी, वह भी बहुत कम हो गई है। छाती मे बिना पीडा मै चार से पॉच किलोमिटर चल सकता हूॅ।" अभी तो उनका कहना है कि अपने व्यवसाय मे दस वर्ष पूर्व जितना उद्यमी थे, उतना ही उद्यमी बन गये है। कमर की पीडा के कारण पहले वे लगातार तीन घण्टे बैठ नही सकते थे, अब वे बिना पीडा बैठ सकते है। इस प्रकार हर तरह से वे नयी ताजगी महसूस कर रहे है। नियमित रूप से शवासन और ध्यान करते है।

* श्री रणछोडभाई एम. पटेल, ६१ वर्ष। १९८५ मे हृदयरोग का हमला हुआ था। इस हमले के बाद दवा लेने पर भी थोडा श्रम करने पर उनको साँस की तकलीफ बढ जाती थी। १९९१ के नवम्बर मे कार्यक्रम मे जुड गये। दो मास दरमियान सीरम कॉलेस्टेरोल प्रमाण २९५ मि.ग्रा. मे से २४२ मि.ग्रा तक और सीरम ट्राइग्लिसराइड्स का प्रमाण १७० मि.ग्रा हुआ। अब बिना तकलीफ चार किलोमीटर चल सकते है। वे मोटरकार चलाते है। वजन उनका बहुत अधिक था, अब सप्रमाण हुआ है। दवाइयाँ भी कम कर सके है। एक समय था कि उनको चाय की तलब थी, वह अब बिना चाय चला सकते है। उनके शब्द है, ''मेरी प्रकृति मे सुधार हुआ है। मै पहले जरूरत से ज्यादा आग्रही था, अब नर्म बना हूँ। अप्रिय घटनाये अब मुझे पहले की तरह परेशान नही करती।

* श्री ईश्वरभाई महीपतभाई पटेल, ६४ वर्ष। कॉलेज के निवृत्त आचार्य। उनको १९८८ से ब्लडप्रेशर और डायाबिटीस है। बी पी. २००/१०० था और भोजन करने के बाद ब्लडशुगर लेवल पीपीबीएस २३५ था। उन्हे हड्डियो की छीज का वात रोग था। १६-१२-'९१ के दिन इस कार्यक्रम मे जुड जाने के बाद उनका कहना है कि ध्यान से उनकी जीवनपद्धति मे खास करके खाने पीने की आदत मे खास फर्क पडा है। उनका वजन ७ किलोग्राम कम हुआ है। बी.पी. की दवा की मात्रा मे कमी हुई है। उनका बी.पी. १४०/८० है। ब्लडशुगर का स्तर १९५ है। अब वात दर्द नहीवत् है। तीन मास पहले अहमदाबाद से ७५ किलोमिटर की दूरी पर यात्राधाम डाकोर पैदल चलकर गये थे। वे कहते है, ''मुझे पूरा विश्वास है

है और अच्छी स्फूर्ति रहती है। वे कहते है, "कार्यक्रम से मुझे जीवन प्रणाली बदलने की प्रेरणा मिली है। मै विश्वास के साथ ऐसा मानता हूँ कि मुझे फिर से एटेक आनेकी शक्यता नहींवत् बन गई है"।

* श्री शशीकान्त के. प्रजापति, ५३ वर्ष। व्यवसाय: कन्सलटिंग एन्जिनियर। उन्हे प्रथम हृदयरोग का हमला ता. २१-११-'९० के दिन आया। बाद मे उन्हे एन्जाइना की तीव्र तकलीफ रहने से एन्जियॉग्राफी कराने की सलाह दी गई थी। उनकी नाडी की धडकने इत्तिफाकन घटकर ३५ हो जाने से, ता. ४-२-'९१ के दिन उनको मद्रास ले जाना पडा। ता. १२-२-'९१ को एन्जियॉग्राम करवाने पर तीन आर्टरीओ मे ब्लॉक मालूम पडा। इसलिये ता. १५-२-'९१ के रोज बायपास सर्जरी करवाई गई। उन्हे डायाबिटीस और हाइपरटेन्शन भी थे। बायपास का ऑपरेशन करवाने पर भी उन्हे भावि के बारे मे श्रद्धा न थी। वे हमारे कार्यक्रम मे दाखिल हो गये। वे कहते है, "डॉ. रमेशभाई के साथ हुई हृदयपूर्वक की बातो ने मेरी विचार करने की रीत बदल डाली है। पुन: जिदगी का आनद मै उठा सकता हूँ। अब उनको ठीक रहता है। कोई तकलीफ नही है। स्कूटर आसानी से चला सकते है। ब्लडप्रेशर पहले १८०/१२० था, वह अब कम होकर १५०/९० हो गया हे।

* डॉ. रोहित सी. वकील, ४२ वर्ष। व्यवसाय: पॅथोलॉजिस्ट। उनके परिवार मे हृदयरोग और ऊँचे लाईपीड्स का इतिहास बहुत बडा है। उन्हे २० वर्ष तक कोलेस्टेरोल तथा ट्रायग्लिसराइड के प्रमाण

आज सुधीमां घणा विद्वानोए एनी चर्चा करी छे। आ० सिद्ध-सेनना अन्य लेखकोए करेला उल्लेखो तेमनो समय निर्धारित करवामां बाह्य पुरवा तरीके गणी शकाय ।

१. सातमा - आठमी सदीना आ० हरिभद्रसूरि आ० सिद्धसेन अने 'सन्मतितर्क'नो उल्लेख करे छे ।

२. श्री. जिनदासगणी महत्तर (सं. ६७६) पण आ० सिद्धसेन अने 'सन्मतितर्क'नो उल्लेख करे छे।

३. श्री. जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण (सं. ६११) आ० सिद्धसेन द्वारा प्रस्थापित अभेदवादनुं खंडन करे छे ।

४. श्री. पूज्यपाद (छट्ठी सदी) पोताना 'जैनेन्द्र व्याकरण'मां आ० सिद्धसेननो उल्लेख करे छे अने तेमना 'सर्वार्थसिद्धि'मां आ० सिद्धसेनकृत 'द्वात्रिंशिकाओ' नो उल्लेख करे छे।

५. अन्य उल्लेखो परथी लागे छे के आ० मल्लवादीए सन्मतितर्क पर टीका लखी हती एवो तेमना 'द्वादशारनयचक्र'मां तेनो उल्लेख छे। जो के आ० मल्लवादीनो समय सुनिश्चित नथी पण एटलुं चोक्कस के आ० सिद्धसेन तेमनी पूर्वे थया हशे परंपरा तेमने उज्जैनना विक्रमसंवत्संस्थापक विक्रमा-दित्यना समकालीन ठेरवे छे अने ते प्रमाणे तेमनो समय इ.स. पूर्वे ५७ आसपासनो ठरे।

आ० सिद्धसेन विक्रमादित्यना समकालीन हता एवुं अनेक

आया। हाल ही मे उनकी दो सतानो की शादी का वोझ वे उठा सके है। वे कहते है, ''मुझे हर तरह से ठीक रहता है। अपना धधा मै सतोषपूर्वक कर सकता हूँ।

* श्री शिरीष महेता, ६२ वर्ष। व्यवसाय · निवृत्त सरकारी अधिकारी। १९८९ मे उन्हो ने बायपास सर्जरी करवायी थी। इसके वाद चार मास मे ही उन्हे एन्जाइना की तकलीफ पुनः शुरू हुई। इस कारण ज्ञनवरी १९९० मे ट्रेडमिल टेस्ट करवाया। वह वहुत ही खराव आया। एन्जाइना तो चालू ही था। इस कारण वे जीवन से हार गये हो ऐसा लगा। जीवन नीरस वन गया और जीवन मे निराशा फैल गई।

हमारे कार्यक्रम मे समिलित होनेके उन्हे छः मास ही हुए कि वे आनद से कहने लगे कि, ''यह कार्यक्रम तो हमारे परिवार के लिए आशीर्वादरूप सिद्ध हुआ है। जिन मीटिगो और सेमिनारो को मै प्रमुख की हैसियत से एक साल से टालता था, उसमे उपस्थित रहकर अपना कर्तव्य निभाता हूँ। मुझे बहुत कम दवाइयाँ लेनी पडती है। आसानी से पॉच किलोमिटर मै चल सकता हूँ। रक्त मे मेरा कोलेस्टेरोल २३८ मि.ग्रा. प्रतिशत से कम होकर १८९ मि ग्रा. प्रतिशत हुआ है। सव से बडी बात तो यह है कि अव मृत्यु का भय रहा नही है। फिर से ट्रेडमिल टेस्ट करवाने के लिए मै तैयार हूँ।

* श्री भूपेन्द्र देसाई, ५४ वर्ष। व्यवसाय मिल मे क्लर्क। उन्हे उग्र डायाविटीस के साथ १९८९ मे हार्टएटेक आया। (एन्टिरीअर वोल इन्फार्कशन) इसके बाद १६वी फरवरी १९९१ के रोज ट्रेडमिल

वाले प्रसग पहले की तरह परेशान नही कर सकते है।

* श्री के. जे. त्रिवेदी, ६३ वर्ष। गुजरात अवुजा सिमेन्ट के निवृत्त सलाहकार।

सबसे पहले जॉच करवानेके लिए २३ वी सितम्बर १९८६ के रोज मेरे पास आये थे। इसके पूर्व २२ वी जनवरी १९८६ को उन्हे हार्टएटेक आया था। ठीक होने पर ता. १३ वी जून १९८६ को स्ट्रेस टेस्ट किया जो खराव आया था। उसमे कोरोनरी रोग का स्पष्ट निर्देश था, इसलिए एन्जियॉग्राफी की सलाह दी गई। १४ वी अगस्त १९८६ के रोज जसलोक अस्पताल, वम्वई मे एन्जियॉग्राफी करवायी। उस रिपोर्ट मे एक आर्टरी सौ प्रतिशत, दूसरी निन्यानवे प्रतिशत और तीसरी सत्तर प्रतिशत वद मालूम पडी। इस कारण उन्हे वायपास सर्जरी के लिए सलाह दी गई। वायपास सर्जरी के वारे मे उनको जानकारी हासिल करनी थी, इसलिए वे मेरे पास आये। उन्हे पद्रह साल पहले ड्यु-ओडेनल अल्सर हुआ था। जव वे मुझसे मिले तव थोडा श्रम पडने के कारण उन्हे छाती मे दर्द होने लगता था। उन्हे २-वी वर्ग मे रखा जाये, ऐसा एन्जाइना था।

उनको मैने हमारे कार्यक्रम मे जुड जाने की सलाह दी। दवाइयो मे कुछ परिवर्तन किये। आहारविषयक सलाह-सूचना दी। ध्यान से सलग्न सपूर्ण कार्यक्रम से श्री त्रिवेदी प्रतिदिन चार से पॉच कि.मि. वगैर तकलीफ चल सकते है। उनकी शिकायते दूर हुई है। छ· जुलाई १९८८ के रोज करवाया गया, उनका ई.सी.जी. अच्छा आया। अव उन्हे पहले से ठीक रहता है। ता १९-८-१९८८ का वेरियम मिल एक्स-रे अल्सर मे रूझ आया हुआ वताता है।

पति भी इस कार्यक्रम मे सहयोग देने के लिए सम्मिलित हुए है। वे शवासन गत ग्यारह वर्षों से करते है। लेकिन यहाँ समूह में शवासन करने से अधिक हलकापन महसूस होता है, ऐसा वे मानते है। समूह मे होती ऐसी अनुभूति, मन की शाति और हलकापन, उन्हो ने पहले कभी महसूस नही किये थे।

* डॉ. जितेन्द्र के. शाह, ५५ वर्ष। व्यवसाय : फेमिली फिझिशियन। दो वर्ष पूर्व उनके परिवार मे बडी करुणाजनक घटना घटी भी थी। इस घटना के तनाव के कारण उन्हे छाती मे पीडा होती रहती थी। कई वार श्रम के कारण पीडा बढ जाती थी, जॉच करने पर ई.जी.सी नोर्मल आया। अन्य जॉचो की रिपोर्ट नोर्मल आयी। इसलिए उन्हे ट्रेडमिल टेस्ट तथापि अन्य सभी प्रकार के टेस्ट करवाने की सलाह दी गयी।

इस समय दरम्यान वे मुझ से मिले। मैंने उनको हमारे कार्यक्रम मे जुड जाने की मलाह दी। उनकी पत्नी पीनाबहन को भी ऐसे तनाव थे। उन्हे जीवन का निरस बन जाना, चिडचिडापन, अनिद्रा और डिप्रेशन की शिकायत थी। वे भी इस कार्यक्रम मे जुड गयी। इससे उन्होने बेहद सुधार महसूस किया। आत्मविश्वास बढा। पारिवारिक प्रवृत्तियो मे दिलचस्पी लेने लगी है और डिप्रेशन से मुक्त हुई है। डॉ. जितेन्द्र शाह को भी ऐसा ही लाभ मिला, वर्ताव मे बडा सुधार आया और मन की शाति की पुन·प्राप्ति हुई है। ऐसा होने पर एन्जाइना की तकलीफ मे उल्लेखनीय सुधार हुआ है। इस अनुभव से प्रेरित होकर, दूसरे दस हृदयरोग के मरीजो को उन्होने हमारे कार्यक्रम मे भेजे। उन सभी को फायदा हुआ है और आत्मविश्वास बढा है।

करने की सलाह दी गई थी। उसे न करवाते वे दो साल पहले युनिवर्सल हीलिंग कार्यक्रम मे जुड गये। आज वे अत्यंत स्वस्थ है। उन्हे जीवन मे तीन चीजे हासिल करने की तमन्ना थी। (१) वज़न घटाने की (२) धूम्रपान छोडने की (३) क्रोध पर काबू प्राप्त करने की। ये तीनो सिद्धियां इस कार्यक्रम ने उनके लिए सभव बनायी है। कहते है कि जैसे ही क्रोध आना शुरू हो, तुरंत ही पेट से साँस लेना शुरू करते है। इस प्रक्रिया से चमत्कारिक ढंग से चित्त शात हो जाता है। अपने स्वभाव मे आये परिवर्तन के बारे मे कहते है, "प्रत्येक बात मे मै ही सच्चा ऐसी वृत्ति नहीं होती है और सच्चा हूँ तो भी उस विषयक आग्रह अब रहता नही है। शवासन और ध्यान के अभ्यास से मेरे स्वास्थ्य को हानिकर्ता चीजो से आसानी से दूर रहा जा सकता है।"

* एक पति-पत्नी का केस भूलाया न जा सके ऐसा है। उनकी बेटी की क्रूर हत्या के आघात से दोनो को एन्जाईनाका दर्द हुआ। उसमे पत्नी को तो डिप्रेशन भी हो गया था। इस भयकर आघात मे से बाहर निलकने मे इस कार्यक्रम ने उनकी इस नाजुक वक्त दरमियान सहायता की, ऐसा वे कहते है। आज वे दोनो स्वस्थ है।

* ६० साल के दूसरे एक व्यक्ति ने १९८९ मे बायपास सर्जरी करवायी। लेकिन छः मास मे ही पुनः असह्य एन्जाईना के शिकार बने। उनका ट्रेडमिल टेस्ट सिर्फ तीन मिनट मे पॉझिटिव आने पर जीवन नीरस बन गया। फिर से एन्जियोग्राफी करवाने की सलाह मिली। वैसा न करवाते '९१ से इस कार्यक्रम मे जुड गये और

से कहा कि कॅन्सर की जानकारी मिलने पर भी उनका कार्डियोगाम इतना अच्छा है, यह युनिवर्सल हीलिंग का प्रभाव है। फिर कॅन्सर का इलाज करवाया। उसमे भी कम से कम विपरीत असर हुआ। अब वे स्वस्थ है और अगले सप्ताह हम कार्यक्रम मे आयेंगे।''

* ध्यान के अनुभव की बात करते हुए फिझिकलरिसर्च लॅबोरेटरी के एक वैज्ञानिक ने कहा, ''डोक्टर, ध्यान ठीक तरह हुआ कि नही, यह ध्यान दरम्यान बीते हुए समय की अनुभूति पर से, मैं कह सकता हूँ। समय अधिक बीता है, ऐसा लगे, तब ध्यान ठीक तरह हुआ नही है। और समय बीता ही नही, ऐसा लगे तब ध्यान ठीक तरह से हुआ। ऐसा समझ लेना चाहिये। ध्यानमग्न स्थिति मे समय कितना गुजर जाता है, इसका पता ही नही चलता। ध्यान मे समय मानो स्थगित हो जाता है। समय विस्तिर्ण होता लगता है। जब समय की सिकुडन महसूस हो, तब मामूली समय भी ज्यादा लगता है। जैसे किसीकी प्रतीक्षा करते समय लगता है वैसे।''

* एक दूसरे युवान मरीज की बात सुने। हृदयरोग का हमला उन्हे चार साल पूर्व आया था। एन्जियोग्राफी के बाद बायपास सर्जरी की सलाह मिली थी। लेकिन मेडिकल इलाज ही जारी रखा। हमारे कार्यक्रम मे दाखिल हुए। आज वे बिलकुल स्वस्थ है। पेशा बडा है। करीब बारह घण्टे प्रतिदिन कार्यरत रहते है। नियमित घूमने जाते है। वहाँ एक पेड के नीचे शवासन और ध्यान कर लेते है। थोडी ही दूरी पर, मुख्य मार्ग पर ट्रकों का आना जाना बढ जाये,

से यह कार्यक्रम जारी रखा है। इससे उनको लाभ भी हुआ है। एन्जाईना का दर्द कम हुआ है। सर्जरी अनिवार्य नही लगती। कॉलेस्टेरॉल कम हुआ है और मौत का डर टल गया है

कार्यक्रम मे नियमित आनेवाले मरीज़ो मे से ११३ के प्रतिभाव हमने एक प्रश्नोत्तरी के जरिये प्राप्त करके, रूबरू मिल कर चर्चा की। इतना ही नही, जिन्हे अधिक तकलीफ थी, बायपास सर्जरी की सलाह मिली थी, वैसे मरीजो की पत्नियो के साथ भी चर्चा की। इस मे जो प्रतिभाव हमे मिले वे अद्‌भूत थे। पत्नियो ने कहा कि, ''घर मे नया आहार परिवार के सभी सदस्यो ने स्वीकृत किया है और सभी नया आहार करने लगे है।'' करीब प्रत्येक का कहना है कि दर्दी के स्वभाव की उग्रता कम हो गई है। दर्दियो ने नो यह कहा, मगर उनकी पत्नियो ने भी इस बात का समर्थन किया। दर्द का भय मानो गायब हो गया है। लेकिन आवश्यक सावधानी और दवाइयॉ नियमित ली जाती है। ध्यान, शवासन और चलना, सभी नियमित रूप से करते है। सभी की सुख-सपत्ति मे भी बढावा हुआ है। ये प्रतिभाव हमारी कल्पना से कही बेहतर है।

शहर मे, इस नये मार्ग से राहत प्राप्त करते दर्दीओ को देख, इस विषय मे मैंने गहराई से अध्ययन किया।

प्रश्न-३ : डॉ. रमेशभाई, डॉ. डीन ओर्निश की योग की प्रक्रिया क्या भारतीय योग से भिन्न और नयी है?

डॉक्टर : नही। हमारे ऋषिमुनियो द्वारा विकसित की गई यह प्रक्रिया वहुत पुरानी है। यही पर ही डॉ. ओर्निश की प्रेरणा के मूल है। आपको यह जानकर गर्व होगा कि डॉ. डीन ओर्निश का योग का प्रोग्राम, अमरिका के वर्जीनिया मे स्थायी निवास करते स्वामी शिवानदजी के शिष्य, सच्चिदानदजी द्वारा तैयार किया गया है।

प्रश्न-४ : डॉक्टर, क्या यह वैकल्पिक अभिगम है?

डॉक्टर : नही, मै उसकी पूर्ति मे गिनती करूँगा। तवीवी इलाज के साथ साथ स्वस्थ मन द्वारा स्वास्थ्य प्राप्त करने की यह नैसर्गिक रीति है। यहाँ तन और मन के वीच सतुलन वनाये रखना है। हलके व्यायाम द्वारा स्नायुओ को खीच कर, शिथिल वनाकर शवासन करना है। शवासन सभी शारीरिक और मानसिक तनावो को दूर करके, ध्यान के लिए हमे तैयार करता है। साथ ही साथ रक्तवाहिनियॉ भी स्वास्थ्य प्राप्त करती है।

प्रश्न-५ : क्या ध्यान, धार्मिक प्रक्रिया है?

डॉक्टर : नही, ध्यान यानी हमारी समग्र चेतनाओ को एक स्थान पर केन्द्रित करना। कही भी, श्वासोच्छ्वास पर या ओम् जैसे शब्द के लयवद्ध स्वर पर। ध्यान के कारण मन और शरीर तनावमुक्त

अनुभव होते है। आप को जानकर आश्चर्य होगा कि सिर्फ तीन मिनट के ध्यान से ऑक्सिजन की ज़रूरत मे २० प्रतिशत कमी होता है, जब कि छः घण्टे की गहरी नींद के बाद ऑक्सिजन की जरूरत मे ८ प्रतिशत ही घटाव होता है। इसके अतिरिक्त ध्यान से एन्ट्रोपी का प्रमाण कम होता है। अर्थात् ध्यान से छीज कम होता है। ऐसा होने पर ध्यान आयु मे भी वृद्धि हो सकती है।

प्रश्न-८ : ध्यान की टेकूनीक क्या है?

डॉक्टर : ध्यान की टेकूनीक बिलकुल सरल है। स्वस्थ होकर बैठ जाइये। शात चित्त से, ऑखे बद कर के, नाक द्वारा सॉस को भीतर और बाहर आते-जाते देखिये। सॉस प्राण है। इसके द्वारा सिर्फ हवा नही, जीवन तत्त्व और प्रकाश भी हम लेते है। इस तरह चेतना प्राण के साथ एकरूप होकर समग्र शरीरतत्र को निरामय करती है।

प्रश्न-९ : अहमदाबाद मे जो कार्यक्रम और प्रयोग आप करते है उसके विषय मे विस्तार से कुछ कहेगे?

डॉक्टर : हर मगल और शुक्रवार के दिन शाम ६ से ७ हम सी. एन. विद्याविहार मे इकट्ठे होते है। हलका व्यायाम, शवासन, ध्यान और अत मे समूहसवाद और प्रार्थना के बाद विसर्जित होते है। भातृभाव बल और आधार देता है। अकेलापन तनाव बढाता है। डॉ. डीन ओर्निश ने पोसिट्रोन एमिसन टोमोग्राफी की मदद से देखा कि निःस्वार्थ भाव से किया परोपकारी कार्य हृदय की रक्तवाहिनीओ को खुला कर देता है। जब कि केवल स्वार्थवृत्ति,

समझने का प्रयत्न है। इस समय दलाईलामा द्वारा कही गई तिबेटन मेडिसिन के रहस्य की बात मुझे याद आती है। उनकी दृष्टि से निरामय होने की तीन शर्ते है· (१) दर्दी को स्वस्थ कर पाने की डॉक्टर की सपूर्ण श्रद्धा। [देखिये, डॉक्टर की श्रद्धा को उन्होंने प्रथम स्थान दिया।] (२) डॉक्टर मुझे जरूर स्वस्थ करेंगे, ऐसी दर्दी की अपने डॉक्टर मे अचल श्रद्धा। (३) और डॉक्टर का कर्म-कौशल्य।

हमारा कार्यक्रम 'युनिवर्सल हिलीग' ट्रस्ट के जरिये चलाते है। कॉरोनरी हृदयरोग जैसे जटिल रोग मे, सात मास की कम अवधि मे, इस कार्यक्रम ने आशा की किरन प्रकट की। इस के उपरात, सभी को शरीर और मन से तदुरुस्त करने की इस कार्यक्रम मे क्षमता है, ऐसा कहने को मन करता है। शवासन और ध्यान के इस कार्यक्रम की सरल प्रक्रिया, व्यक्ति को अपने मे एक ऐसी शाश्वत शक्ति की अनुभूति करवाती है, जो समय और अवकाश की मर्यादाओ मे परे है। इस अनुभूति के कारण ही व्यक्ति मे सपूर्ण स्वास्थ्य का आविर्भाव होता है। उसमे प्रज्ञा अपने आप आती है। इस कार्यक्रम को शिक्षण क्षेत्र के अतर्गत समाविष्ट कर दिया जाय, तो समाज मे अभूतपूर्व परिवर्तन लाया जा सकता है और इसी लिये इस कार्यक्रम को 'युनिवर्सल हीलिग' नाम दिया गया है।

प्रश्न-१२: शाला के अभ्यासक्रम मे योग से क्या लाभ होगा, उसे आप समझाएँगे?

डॉक्टर: मुझे लगता है कि योग से हमारा शिक्षण सपूर्ण बनेगा। आज का अभ्यासक्रम केवल वैज्ञानिक अभिगमवाला है। वैज्ञानिक अभिगम की जरूरत तो है ही, लेकिन वह हमे अपनी सही पहचान

हंस : एक शिक्षक

१. जब समूह मे एक हस अपने पख फडफडाता है। तब उसके अनुगामी हस को हवा मे ऊँचे उडने के लिए हवा के प्रवाह का आधार मिलता है। पक्षी अकेला उडान करे इस की निसबत, जब वे समूह मे वि (V) आकार मे उडते है, तब उन की दूर तक उडने की शक्ति मे ७१ प्रतिशत बढावा होता है।

साराश : समान ध्येय और सहकार की भावनावाले व्यक्ति द्वारा समूह मे कोई काम या प्रवृत्ति की जाये, तो वे अपने लक्ष्य की ओर शीघ्रता और आसानी से पहुँच सकते है। कारण कि वैसा होने पर उनको एक दूसरे का आधार मिलता रहता है। एक दूसरे के अवलबन से वे आगे बढते है।

(२) जब कोई पक्षी समूह से अलग पड जाता है, तब अकेले उड़ने के प्रयत्न मे वह यकायक तनाव महसूस करता है। और तुरत ही वापस लौटकर, समूह मे अपने आगे उडने वाले पक्षियो की उड्डयन शक्ति का आधार प्राप्त कर लेता है।

साराश : यदि हम मे पक्षी जितनी भी सूझ हो, तो हमे जिस ध्येय को हासिल करना है, उसी ध्येय के लिये प्रयत्नशील समूह के साथ मे रहेगे। इतना ही नही बल्कि इस समूह की सहायता स्वीकृत करने मे और उसे मदद करने के लिए तत्पर रहेगे।

बीजां पण केटलाक प्रमाणो छे जे विक्रमादित्यने इ.स. पूर्वेनो पहेली सदीमां स्थापी आपे छे । इ.स. ८७ नी आसपास थयेल 'गाथासप्तशती' नो संपादक लेखक—हाल विक्रमादित्यना दाननो उल्लेख करे छे । वराहमिहिर प्राचीन गर्गनुं अवतरण आपे छे अने विक्रमादित्य ते पूर्वे हतो । आ ए ज राजा छे जेणे विक्रम (कृत) संवत् स्थाप्यो अने जाणे कृतयुगनुं पुनः अवतरण थयुं । 'गुणवचनद्वात्रिंशिका'ना केटलाक उल्लेखो आ वातनी स्पष्ट पुष्टि आपे छे (जुओ श्लोक १७–२४) ।

डॉ० क्राउझे शिलालेखोने आधारे आ उल्लेखोने समुद्रगुप्त परक माने छे । तेमणे तारवेला २६ मुद्दाओमांथी एकेने अकाट्य प्रमाणरूपे स्वीकारी शकाय एम नथी जेमांथी स्पष्टपणे समुद्रगुप्तनो ज निर्देश मळतो होय ।

चंद्रगुप्त बीजाने विक्रमादित्य तरीके स्वीकारवामां सहुथी मोटी आपत्ति ए छे के एनुं चारित्र्य सारुं नहोतुं अने आ० सिद्धसेने जेनी 'गुणवचनद्वात्रिंशिका'मां प्रशंसा करी छे ते व्यक्ति चन्द्रगुप्त न ज होइ शके एम लाग्या करे छे । वळी, नकारात्मक प्रमाणनो विचार करीए तो परंपरामां क्यांय विक्रमादित्यनुं वधारे जाणीतुं अपर नाम चंद्रगुप्त के समुद्रगुप्त प्राप्त थतुं नथी । शा माटे आवो एकाद पण उल्लेख नथी मळतो ?

आधुनिक अत्रत्य विद्वानो हवे कालिदासने पण इ.स. पूर्वेनी प्रथम सदीमां मूकवाना पक्षना छे, ए ज कारणोसर आ० सिद्ध-

युनिवर्सल हीलिंग प्रोग्राम और शिक्षण

जब जिंदगी और मौत से संबध रखनेवाला सबकुछ हमारे अदर से ही कार्यान्वित होता है, तब हमे दुनिया के समाचारो की आवश्यकता क्या है?

—विलियम लॉ

ध्यान का प्रयत्न करते करते, अगर मन भटक जाता है, तो उसे धीरे से पुनः ध्यान मे लगा दिजिये। श्वास ही प्राण है। ध्यान के प्रयास मे अगर बार बार मन का भटकना और आपका उसे पुनः ध्यान मे लगाना ऐसा करने के अलावा और कुछ भी नही कर पाते, तो भी आपका यह समय बरबाद नही हुआ। बल्कि आपने समय का सदुपयोग ही किया।

समुचित जीवन की कला का अर्थ है, आत्मा और कुदरत के बीच का बुद्धिपूर्ण सहकार। आत्मा के बिना कुदरत अध है, और कुदरत के बिना आत्मा लगडा है। आत्मा और कुदरत अपने हेतुपूर्ण सहयोग से ही जीवन को गौरवपूर्ण अर्थ दे सकते है।

दूसरो के लिये जिया जानेवाला जीवन ही जीने योग्य है। जो व्यक्ति अपने और अपने साथियो के जीवन को अर्थहीन समझता है, वह सिर्फ दुःखी ही नही रहता, बल्कि जीने के लायक भी कदाचित् ही है। सफल इनसान बनने की कोशिश न करो, मूल्यनिष्ठ

ए एन. व्हाइट हेड शैक्षणिक हेतुओ के बारे मे बात करते हुए दो मुद्दो पर विशेष भार देते है। एक, तो सशोधन का आनंद और दूसरे हरदम उपस्थित इस अविरत वर्तमान के बारे मे समझना। और इसी दृष्टिकोण से देखा जाये तो शैक्षणिक व्यवस्था मे यु.एच.पी. जैसे कार्यक्रम की सार्थकता दिखाई पडती है। यु.एच.पी. का व्यावहारिक हेतु सिर्फ वर्तमान के मूल्य को समझाने का ही नहीं है, बल्कि उससे भी आगे व्यक्ति को यह सिखाना है कि वर्तमान में ज्यादा से ज्यादा कैसे जीया जाये। एक बार व्यक्ति वर्तमान क्षण मे स्थिर होना सीख ले तो समय की बहती धारा मे उसे एक स्थिर भूमि मिल जाती है। फिर सबकुछ सुव्यवस्थित, सामजस्यपूर्ण और सुचारु दिखाई पड़ने लगता है।

शिक्षण का हेतु व्यक्ति के जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाना है। यही पर यु एच.पी. तत्त्वदर्शन और तरीके की सार्थकता रखते है। जीवन की गुणवत्ता का अर्थ है मानवीय, सामाजिक और आर्थिक सतोष एव तको का उस मात्रा मे उपलब्ध होना जो एक समतोल मापदड के अनुरूप हो। सिर्फ भौतिक आनद के पीछे भागने के वैयक्तिक और सामाजिक दुष्परिणामो के बारे मे नयी पीढि का मार्गदर्शन कर के उन की मदद करना जरूरी है। उनको एक ऐसी नयी दिशा प्रदान करनी चाहिये, जिससे व्यक्ति और पूरा समाज जीवन की गुणवत्ता प्राप्त कर सके। यु.एच.पी. जैसे कार्यक्रम को विद्यार्थियो को एक विषय के तौर पर सिखाने से तदुरुस्त समाज की रचना के लिये एक नया द्वार खुल जायेगा।

विश्व आरोग्य सस्थान (WHO) ने एक ऐसी आशका व्यक्त की है कि तीसरी दुनिया जिस मे भारत भी शामिल है – के

उपसंहार

पिछले पाँच सालोंसे कॉरोनरी हृदय रोग के उपचार हेतु 'युनिवर्सल हिलिंग' कार्यक्रम का संचालन करते करते जो तथ्य उभरकर सामने आये है, उनके बारेमे कुछ बाते करना चाहूँगा।

कॉरोनरी हृदयरोग क्यो होता है, इसके बारेमे आज तक कोई भी ठोस वजह तबीबी विज्ञान के सामने नहीं आई है। आनुवंशिकता, रक्तचाप, कॉलेस्टेरोल की बढत, मधुप्रमेह, कसरत का अभाव, इत्यादि कुछ हद तक जिम्मेदार हो सकते है, किंतु अधिकतर किस्सों मे आधुनिक जीवनशैली से उत्पन्न मानसिक तनाव ज्यादा जिम्मेदार है, ऐसा कई संशोधको का मत है।

करीब ३,००० दर्दीओ ने आजतक इस कार्यक्रम मे भाग लिया है। उनके अनुभवो का अभ्यास करते हुए पाया गया कि दवाइयाँ और ऑपरेशन आदि माने हुए उपचारो के साथ, यदि तनाव उत्पन्न करने वाली उनकी जीवनशैली बदल दी जाये, तो उनको काफी फायदा होता है। उनके रोग की मात्रा मे कमी होती है। दवाइयाँ कम मात्रा मे ले कर भी ज्यादा असर दिखाई पडती है। शस्त्रक्रिया करने की आवश्यकता कम रहती है और अगर करने के बाद जीवनशैली मे बदलाव जारी रखे, तो शस्त्रक्रिया से जो फायदा होता है, उसमे वृद्धि होती है।

प्रेरणा और सूझबूझ मिलती है। पॉच साल के अनुभवो का अवलोकन करते हुए जब अनेक दर्दियो की जीवनशैली मे बदलाव दिखाई देता है, तो मुझे बहुत ही सतोष की अनुभूति होती है।

हर व्यक्ति के अदर उसकी आत्मा की अमर्याद शक्ति होती है, मगर आज की तनावपूर्ण जीवनपद्धति व्यक्ति को अपने इस आत्मबल से अलग कर देती है। अपने आपसे अलग हो जाने की इस स्थिति मे क्रोध, ईर्ष्या, तिरस्कार, निदा करने की वृत्ति, इत्यादि भावनाओ को बढावा मिलता है और ऐसी स्थिति मे हृदयरोग के हमले की सभावना बहुत बढ जाती है।

ऐसा देखा गया है कि इन नकारात्मक भावनाओ की वजह से दिल अपनी धडकनो मे जरूरी तब्दिलियॉ लाने की अपनी क्षमता धीरे धीरे खोता जाता है। और परिणामत· हृदय की धडकने असमतोल बन जाती है। अैसा होने पर हृदयरोग के अचानक हमले की और मृत्यु की सभावना पॉच गुना बढ जाती है। इस कार्यक्रम से हृदय की धडकने लयबद्ध होती है, और धड़कनो की दर मे जरूरी तब्दिलियॉ लाने की हृदय की क्षमता बढ जाती है। इस से अचानक मृत्यु की सभावना भी कम हो जाती हो, ऐसा हो सकता है।

सब से अहम् बात तो यह है कि शवासन और ध्यान के इस प्रयोग से व्यक्ति के अदर का सयानापन और शाति मुखरित होकर, बधुत्व की भावना जागृत होती है। इस के फलस्वरूप क्रोध, ईर्ष्या, तिरस्कार, इत्यादि नकारात्मक भावनाओ मे कमी होती है। अलगपन की भावना दूर होती है। आगे बतायी नकारात्मक भावनाओ की जगह जब क्षमा, दया, परोपकार, प्रेम और निस्वार्थ वृत्ति जन्म लेते है, तो इसी को हम व्यक्ति की आध्यात्मिक प्रगति कह सकते है।

परिशिष्ट

अमरिका की प्रथम महिला श्रीमती क्लिन्टन को लिखे इस पत्र मे डॉ. डीन ऑर्निश ने तृतीय विकल्प की गुणवत्ता का और उसके दूरवर्ती सुदर परिणामो का मननीय विश्लेषण किया है।

प्रिय श्रीमती क्लिन्टन,

गुरुवार की सुबह आप को मिलने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ, इस के लिए मेरा हार्दिक कृतज्ञता का सनिष्ठ भाव कृपया स्वीकार करे। आपके वहीवट मे आरोग्य की देखभाल को आप इतनी ज्यादा अग्रिमता देती है, इस के लिए आप का आभार मानता हूँ।

राष्ट्रिय तबीवी सस्थाओ की आशिक मदद से, पिछले सोलह सालो मे, तबीबी प्रयोगो की अेक बहुत वडी शृखला का आयोजन हुआ था। इन प्रयोगो मे अेक बात सिद्ध हो गई की केवल जीवन-प्रणाली मे व्यापक परिवर्तन करने से, कडे से कडा हृदयरोग स्वास्थ्य की और पुन प्रस्थापित किया जा सकता है। आनद की बात तो यह है की स्वास्थ्य मे आनेवाले इस सुधार के लिए, न तो बायपास सर्जरी या अेन्जियोप्लास्टी की जरुरत पडती है और न ही कॉलेस्टेरॉल की मात्रा कम करनेवाली दवाइओ का जीवनभर के लिए आश्रय लेना पडता है। जीवनप्रणाली मे ऐसे परिवर्तनो मे,

पर गत साल सिर्फ अमरिका मे पॉच अरब डॉलर से भी अधिक व्यय हुआ था और प्रत्येक शस्त्रक्रिया मे औसतन् खर्च १५,००० डॉलर हुआ था। इसके बदले जीवनप्रणाली मे गहरा परिवर्तन किया जाये तो खर्च मे भारी कमी हो जाती है। बायपास सर्जरी करवाने की निसबत हृदयरोग का दर्दी अगर अपनी जीवनप्रणाली बदलने मे कृतनिश्चयी बने, तो उस के कम से कम ४०,००० डॉलर बच जाये, जो अन्यथा उसे खर्चने पड़ते।

जिन्हे कॉरोनरी बायपास सर्जरी या कॉरोनरी एन्जियोप्लास्टी करवानी पडी होती, ऐसे दर्दीओ को जीवनप्रणाली मे परिवर्तन लाने का सीधा विकल्प दे दिया जाये, तो वे लबे समय तक चलनेवाले खर्च से बच सकते है। बायपास सर्जरी और एन्जियोप्लास्टी पर बहुत ज्यादा खर्च करने के बाद भी, जो बायपास ग्राफ्ट्स रखे हो, वे सिर्फ पॉच साल मे तो आधे ठिठक जाते है और एन्जियोप्लास्टी वाली आर्टरीझ मे से तीसरे हिस्से की आर्टरीज सिर्फ चार से छ' मास मे फिर से स्थगित हो जाती है, चाहे किसी भी प्रकार की पद्धति को लागू किया गया हो। ऐसा हो तब कॉरोनरी बायपास सर्जरी या कॉरोनरी एन्जियोप्लास्टी का बार बार पुनरावर्तन करना पडता है और ऐसा होने पर फिर से अधिक खर्च होता है।

ज्यो ज्यो समय बितता है त्यो त्यो अधिकाधिक बिगाड होता है, ऐसी चिकित्सा-प्रथा के बदले, यदि हृदयरोग के दर्दी अपनी समग्र जीवनप्रणाली मे आमूल परिवर्तन लाने के लिये कृतनिश्चयी बने तो वे अधिकाधिक स्वस्थ होते जायेगे। जिन रोगियो के विषय मे हम सशोधन कर रहे थे, उन मे से औसतन् ९१ प्रतिशत किस्सो मे, थोडे ही सप्ताह मे एन्जाईना (छाती की पीड़ा मे) मे कमी

प्रमाण कम करने के लिए और जीवनपर्यन्त लेनी पड़ती दवाइयों के विकल्प की हैसियत से स्वीकार करनेवाले डॉक्टरों का प्रमाण भी बढ़ता जा रहा है। यह अभिगम हर समय बढ़ते जाते खर्च का प्रमाण कम करने के लिए तीसरा विकल्प देने के लिए समर्थ है।

बढ़ते जाते खर्च के प्रश्न के अतिरिक्त, बायपास सर्जरी का सामाजिक समानता के साथ भी मेल बैठता नहीं है। गत साल जिन्हों ने बायपास सर्जरी करायी थी, वैसे दर्दीओ के ९० प्रतिशत तो ऊपर के वर्ग के गोरे पुरुष थे। अब इस वर्ग मे तो वैसे भी हृदयरोग का प्रमाण कम ही रहा है और इस बात के चाहे जितने सबूत भी मिलेंगे। प्रमाण बढ़ रहा है स्त्रियों मे, लघुमतीओ मे और निम्न सामाजिक-आर्थिक वर्गों मे।

आधी स्त्रियाँ हृदयरोग और रक्त संग्राहक धमनियो के रोगो मे मरने के लिए निर्मित हुई है। बायपास सर्जरी और एन्जियोप्लास्टी पुरुषो मे जितनी कारगर सिद्ध होती है, उतनी स्त्रियो की बाबत मे नही होती। एन्जियोप्लास्टी करवाने के बाद अस्पताल मे मृत्यु को प्राप्त होनेवाले पुरुषो की निसबत दसगुना ज्यादा स्त्रियाँ मृत्यु को प्राप्त होती है। और बायपास सर्जरी के बाद अस्पताल मे मरनेवाले पुरुषो की निसबत स्त्रियो का प्रमाण दुगुना होता है। इस से उलटा हमारे संशोधन ने साबित किया है, कि हृदयरोग को हटाने की शक्ति पुरुषो की निसबत स्त्रियो मे अधिक होती है। दूसरे शब्दो मे कहे तो हृदयरोग का शिकार बननेवाले जिस वर्ग मे सब से अधिक है और रोग की परंपरागत तबीबी चिकित्सा का जिन्हे कम मे कम लाभ मिलता है, उन के लिए हमारा कार्यक्रम सब से अधिक लाभकर्ता है।

कॉरोनरी हृदयरोग की चिकित्सा में तीसरा विकल्प

ज्यादा असरकारक बिनखर्चीला

कॉरोनरी हृदयरोग यह विश्व की समस्या है। हमारे देश मे भी उसका प्रमाण बढता जा रहा है। अब तो अधिकाधिक लोग जीवन के मुख्य काल, ३५ से ४० की उमर मे इस रोग के शिकार बनते है।

यह बीमारी लागू होने के कारण :

यह बीमारी लागू होने के कारणो मे रक्त का ऊँचा दबाव, मधुमेह, रक्त मे कोलेस्टेरोल का ऊँचा प्रमाण, धूम्रपान और वशपरपरागत झुकाव माना जाता है। जीवन का रहनसहन और विचारसरणी इस रोग की व्यापकता बढाते है। स्वभाव की उग्रता, निपट स्वार्थवृत्ति, तिरस्कारभरी सशयात्मकता, निदात्मक मनोभाव, सामाजिक अवलबन का अभाव, अलगपन (Isolation), व्यावसायिक और पारिवारिक जिम्मेदारियो का बोझ, युवानी मे होते हृदयरोग के हमले के महत्त्व के कारण है।

वर्तमान चिकित्सा पद्धति

वर्तमान चिकित्सा पद्धति का अभिगम, औषधो द्वारा धमनियो को चौडी बनाकर, उन मे रुधिराभिसरण बढाने का और साथ-साथ

वे दर्दी को सचोट मार्गदर्शन दे। इस सबध मे डॉ. डीन ऑर्निश का श्रीमती क्लिन्टन को लिखा पत्र बहुत ही मननीय है। इस पत्र मे उन्होने तीसरे विकल्प के दूरगामी सुदर परिणामो का उत्कृष्ट निदर्शन किया है और कॉरोनरी हृदयरोग की चिकित्सा मे शस्त्रक्रिया के पीछे होते बेहद खर्च से बचने के लिए चिकित्सा की गुणवत्ता से समझौता किये बगैर तीसरे विकल्प की महत्ता समझायी है।

चिकित्सा मे तीसरा विकल्प

अभी अभी अमरिका के हृदयरोग निष्णात डॉ. डीन ऑर्निश को कॉरोनरी हृदयरोग की चिकित्सा मे तीसरा विकल्प खोजने मे सफलता प्राप्त हुई है। इस खोज ने तबीबी विज्ञान को एक नया मोड दिया है। अब तक ऐसी मान्यता थी कि ऍथरोस्कलरोसिस की प्रक्रिया पलटना शक्य नही है। इस के बजाय डॉ. डीन ऑर्निश ने अनेक परीक्षणो से साबित कर दिखाया कि यह क्रिया पलटी जा सकती है और कॉरोनरी हृदयरोग मिट सकता है।

डॉ. डीन ऑर्निश इस तीसरे विकल्प के द्वारा इस रोग के निवारणार्थ एक कार्यक्रम चला रहे है। गुजरात के ख्यातनाम कार्डियोलॉजिस्ट डॉ. रमेशभाई कापडिया ने डॉ. ऑर्निश का कार्यक्रम प्रत्यक्ष देखकर, उन के दर्दीओ की मुलाकात लेने के बाद, इस के अनुरूप कार्यक्रम भारत मे 'युनिवर्सल हीलिग' के नाम से प्रथम अहमदाबाद मे शुरू किया है।

इस कार्यक्रम मे कॉरोनरी हृदयरोग के सभी प्रकार के दर्दी सम्मिलित हुए है। जो बायपास सर्जरी या एन्जियोप्लास्टी करवाना चाहते नही है, जो सर्जरी फिरसे करवानी न पडे, ऐसी इच्छा रखते है, जो इस रोग को आगे बढ़ता रोकना चाहते है, जो ऑपरेशन का भारी

फेफड़े के दर्द, मोतिया, आदि होने की सम्भावना रहती है। इसलिए सम्पूर्ण शाकाहार की हिमायत की जाती है। शाकाहार में कॉम्प्लेक्स कार्बोहाइड्रेट का प्रमाण अधिक होने से भरपेट खाने पर भी कैलरी अधिक ली जाती नहीं है। इसके अतिरिक्त शाकाहार में एन्टिऑक्सिडन्ट ज्यादा होने से रक्त मे फ्री रेडिकल्स की मात्रा कम होती है।

निष्णात डायेटिशियन व्यक्तिगत रूप से कार्यक्रम में प्रत्येक दर्दी को आहारविषयक मार्गदर्शन देते है। उपरात विविध शाकाहारी वानगियाँ, कम घी-तेल मे स्वादिष्ट रीत से बनायी जा सकती है, उसका समूह निदर्शन भी आयोजित किया जाता है।

चलने का हलका व्यायाम

हृदयरोग की चिकित्सा और उसे होता रोकने में चलने जैसा हलका व्यायाम लाभकारी साबित हो चुका है। प्रतिदिन नियमित ३० से ४० मिनट मध्यम रफ्तार से चलने की सिफारिश की जाती है।

शवासन

शवासन ओर ध्यान से दिमाग मे तथापि अतः स्रावी ग्रंथिओ मे से स्वास्थ्यप्रद स्राव पैदा होते है। उससे मन शान्त होता है, तनाव कम होता है, रोगप्रतिकारक शक्ति बढ़ती है और रोग अच्छा होने की प्रक्रिया शुरू होती है। इस तरह व्यक्ति समग्रतया स्वास्थ्य प्राप्त करता है। इससे तनाव कम करने के लिये शवासन और ध्यान का वैज्ञानिक उपयोग विश्व मे सर्वत्र हो रहा है।

शवासन इस कार्यक्रम का महत्त्व का अग है ओर प्रवीण योग शिक्षक उसे समूह मे करवाते है। इस कार्यक्रम मे शवासन की टेक्निक स्वामी शिवानद जी के अमरिका स्थित शिष्य स्वामी सच्चिदानद जी ने सिखाई है और वह अत्यत लाभकारी सिद्ध हुई है।

४. 'वेदवादद्वात्रिंशिका'मां प्राचीन ब्राह्मणधर्मनी मान्यताओ भिन्न रीते व्यक्त थई छे।

५. तेमनी कृतिओमां संस्कृतनां आर्ष रूपोनो प्रयोग थयो छे।

६. जैनोमां आ० सिद्धसेन न्यायशास्त्र विशे लखनार प्रथम छे।

७. तेमनी कृतिओमां परंपरा साथेना संघर्षनुं प्रतिबिंब पण पड्युं छे।

८. आ० सिद्धसेन एवा वातावरणमां जन्म पाम्या अने विचर्या जणाय छे ज्यारे आगम साहित्यने संस्कृतमां रूपांतरित करवनुं मन थाय।

आ बधा पुरावाओ दर्शावे छे के आ० सिद्धसेन इ. स. नी चोथी शताब्दी पूर्वे क्यारेक थया हशे, संभवतः इ. स. पूर्वेनी प्रथम सदीमां।

कृतिओ—

जेनुं कर्तृत्व आ० सिद्धसेनने आरोपायुं होय तेवी घणी कृतिओ मळे छे। एम लागे छे के आ नामना घणा लेखको थया हशे। बधो विचार करतां 'सन्मतितर्क' अने 'द्वात्रिंशिकाओ' आ० सिद्धसेन दिवाकरनी कृतिओ होय एम लागे छे। मूळमां तो ३२ द्वात्रिंशिकाओ हती जेमांथी अत्यारे एकवीस मळे छे अने आ एकवीस पैकी पंदरमां ज बत्रीश श्लोको छे। आ द्वात्रिंशिकाओनी गोठवणी अने तेमांना श्लोको पण विवादथी पर नथी। एकवीस द्वात्रिंशि-

क्षमा देने से हमें तनाव, दर्द और रोग में से मुक्त होने का अनुभव होता है। आप किसी व्यक्ति को क्षमा देते है, तब वह क्षमा उस व्यक्ति को उसके कर्मों की जिम्मेदारी से मुक्त करती नहीं है। लेकिन क्षमा देनेवाले को उस घटना की नुकसानदेह असर से मुक्त करती है।

सचित्र कल्पना का एक बार अभ्यास हो जाये, तो अनेक तरीको से उसका उपयोग किया जा सकता है।

समूह सवाद और भावनाओं का आदान-प्रदान

कार्यक्रम का यह अतिम और अत्यत अगत्य का हिस्सा है। उसमे सभी एक दूसरे के साथ खुले दिल से बात करते है। भावनाओ का आदानप्रदान होता है। इस से उनमे एकत्व और भ्रातृभाव की अनुभूति होती है। भावनाओ के आदान-प्रदान से सभी समस्याओ का हल मिले, यह हमेशा जरूरी नहीं है। भावनाओ की अभिव्यक्ति मात्र से व्यक्ति के तनाव मे कमी आती है, अलगपन का भाव दूर होता है। इस से स्वास्थ्य की पुनः प्राप्ति मे मदद मिलती है।

कार्यक्रम की फलश्रुति

डॉ डीन ऑर्निश के कार्यक्रम के सुंदर परिणामो से प्रभावित हो कर अमरिका की सुप्रसिद्ध बीमा कपनी ने भी उसे चिकित्सा के तौर पर मान्यता दी है।

अहमदाबाद मे पाच वर्ष की समयावधि दरमियान अदाजन तीन हजार दर्दी इस कार्यक्रम का लाभ प्राप्त कर चुके है, उनकी छाती की पीडा मे कमी हुई है। ब्लडप्रेशर, कोलेस्टेरोल तथा वजन मे कमी हुई है और तनावमुक्त बने है। उनको जीवनप्रणाली बदलने की प्रेरणा मिली है। तमाखू-शराब की आदते छूट गई है। उपरात,

उपाय डॉ. कापडिया कर रहे है, वह कोई भी परिचर्या – मेडिकल या सर्जिकल से अधिक श्रेयस्कर वनी रहेगी ऐसी मेरी श्रद्धा है।

विशेष जानकारी

डॉ. रमेशभाई कापडिया, अहमदावाद मे सी. एन. विद्यालय के प्रार्थना मदिर मे, प्रति मगल और शुक्रवार को शाम ५-३० से ७-०० बजे, इस कार्यक्रम का सचालन करते है। इस कार्यक्रम के प्रत्येक विषय को समाविष्ट करती उन की किताबे, गुजराती मे 'हृदयरोगनो पायानो उपचार', 'आहारनो उपभोग तो पण हृदय नीरोग' और 'हृदयरोगनी समस्या एक नवी दिशा' और अग्रेजी मे 'प्रायमर ऑफ युनिवर्सल हीलिग', 'वेल्थ ऑफ फूड, हेल्थ ऑफ हार्ट' और 'हार्ट डिसीझ ए न्यू डायरेक्शन' नवजीवन ने प्रकाशित की है। कार्यक्रम की ओडियो के उपरात विडियो कॅसेट भी उपलब्ध है।

कार्यक्रम के सचालक: डॉ. रमेश आई. कापडिया एफ.आर.सी.पी. (कार्डियोलॉजी) एफ.आर.सी.पी. (एडिन), मॅनेजिग ट्रस्टी, युनिवर्सल हीलिग चॅरिटेबल ट्रस्ट, ३६, जैन सोसायटी, अहमदावाद-३८० ००६

इस विषय संबधित पढने योग्य किताबे

- रिवर्सिंग हार्ट डिसीझ – ले. डॉ. डीन ओर्निश
- ईट मोर, वे लेस – ले. डॉ. डीन ओर्निश
- मीनिग एण्ड मेडिसिन – ले. लारी डोस्सी
- हीलिग वर्ड्झ – ले. लारी डोस्सी
- क्वोन्टम् हीलिग – ले. डॉ. दीपक चोपरा
- एईजलेस बोडी, टाइमलेस माइन्ड – ले डॉ. दीपक चोपरा
- हाउ टु रिवर्स एण्ड प्रिवेन्ट हार्ट डिसीझ एण्ड कॅन्सर – ले. डॉ. नारास भाट

- दोनो पैरो के पजे जमीन की ओर झुके हुए रखे जाये।
- हाथ शरीर से थोडे दूर, करीब १५° के कोने पर रखे। हथेली आकाश की ओर, थोडी मुडी गई रखी जाये।
- ऑखे धीरे से वद करे।
- शवासन की प्रक्रिया दरम्यान जाग्रत रहे। निद्रा यह शवासन नही है।
- योग शिक्षक की सूचना का अनुसरण करते, शरीर के प्रत्येक अवयव पैर से सिर तक क्रमानुसार खीच कर, ढीले कर के, शिथिल अवस्था मे अचल पडे रहने दे।
- विचार सताते हो और ध्यान केन्द्रित न होता हो, तो चिता का कारण नही है। यह स्वाभाविक है। ऑखे हलके से वद रख कर, विचारो पर ध्यान न देकर, जो क्रिया करते है उस पर ध्यान केन्द्रित करने से, अपने आप विचार आते वद हो जायेगे।
- समग्र शरीर शिथिल हो जाने के वाद समग्र ध्यान श्वासोच्छ्वास पर लाना है। कोई खास तरीके से सॉस लेने का प्रयत्न करना नही है। सहज रूपसे चलती हुई सॉस को देखने का है। एक भी श्वास विना ध्यान के नाक से अदर आये नही या वाहर नीकले नही, इस वात का ध्यान रखे। श्वास को देखते देखते प्राण के साथ एक रूप होना है। श्वास यानी कि प्राण, मद होने पर एकाग्रता का अनुभव होगा।
- शवासन मे इस प्रकार मन शात होने पर और शरीर के वाहर-भीतरी सव स्नायु शिथिल होने पर, कॉरोनरी धमनी के स्नायु भी शिथिल वनते है। कॉरोनरी धमनियॉ चौडी वनती है और रक्त पतला वनता है। इस कारण रक्त का परिभ्रमण अच्छी तरह होता है।

साँस चलती हो उसे साक्षीभाव से देखा करें। साँस लेने का खास प्रयत्न न करें। प्राण के साथ एक रूपता साधी जाय। व्यक्ति की चेतना जब श्वासोच्छ्वास के साथ एक रूप बन जाती है तब ध्यान की प्रक्रिया का आरभ होता है। और मन स्वय शात होता है। इस समय व्यक्ति के दिमाग मे से प्रति सेकंड सात से चौदह तरग उद्भवित होते है। वे आल्फा वेव्झ' के नाते पहचाने जाते है और वे मन स्वस्थ बना है, उसका सकेत देता है।

- अधिक आह्लादक अनुभूति के लिए 'ओमकार का नाद' किया जाये, इस नाद मे 'ओकार' की निसबत 'मूकार' को अधिक खींचा जाये। पाँच बार 'ओमकार' के नाद बाद नाद मे दो मिनट आँखे बद रख लीन रहना। अत मे 'ओमूकार' के नाद के साथ, दोनो हथेलियाँ एक दूसरी के साथ घिसकर, आहिस्ता से हलके से आँखो पर रखकर हथेली की उष्णता का आँखो पर अनुभव करे। बाद मे धीरे से आँखे खोली जायँ।

इस के बाद डॉ. कापडिया सक्षिप्त उद्बोधन करते है और समूह संवाद होता है।

अत मे एक दूसरे के साथ हाथ की शृखला बनाकर निम्नानुसार विनोबाजी की सर्वधर्म प्रार्थना कर के विसर्जित होते है।

* * *

नारायण : नर समूह (समाज) मे रहनेवाला ईश्वर नारायण है। समूह का देव सो नारायण (सत्य नारायण)।

पुरुषोत्तम : पुरुष यानी आत्मा। उत्तम यानी परमात्मा। सपूर्ण, दोषरहित, सर्वगुण सम्पन्न सो पुरुषोत्तम (राम)।

गुरु : भगवान पूर्ण गुणमय और सर्वथा दोषरहित है इसलिए गुरु है (दत्तात्रेय)।

सिद्ध : सध चुका। अर्थात् जिस का कार्य पूर्ण हुआ है सो सिद्ध, (महावीर), सयम और अहिसा की मूर्ति।

बुद्ध : बुद्ध याने जाग्रत बना हुआ। बुद्ध यानी मानो साक्षात् करुणा (भगवान बुद्ध)।

स्कद : 'स्कद' सस्कृत शब्द है। ससार के पापो का खडन करनेवाली जो शक्ति है सो (स्कद)।

विनायक : ज्ञान देने की भगवान की जो शक्ति है सो विनायक (गणपति)।

सविता : जगत को प्रेरणा देनेवाला सूर्यनारायण सो सविता। प्रकाश दाता और सबका सेवक।

पावक : सब कुछ पवित्र करनेवाला है सो पावक। ऋषिमुनि अग्नि के उपासक थे।

ब्रह्म : सर्वत्र अणु अणु मे व्याप्त सो ब्रह्म। ब्रह्म परमेश्वर का एक नाम है।

मजूद : महान देव सो मजूद। पारसी मे मजूद यानी महान।

यह्व : ऋग्वेद मे यह्व नाम है। नित्य युवान, उत्साहभरा सदैव तरुण, प्रेरणादायी प्रभु सो यह्व।

शक्ति : पालनपोषण और सहारक परमेश्वर की रचना सो शक्ति।

अद्वितीय : परब्रह्म स्वरूप भगवान - जिस की बराबरी मे कोई नही सो अद्वितीय। उपनिषद मे ईश्वर का नाम।

अकाल : कालातीत प्रभु सो अकाल (गुरु नानक) शीख लोग भगवान के लिए 'अकाल' नाम लेते है।

निर्भय : जो ईश्वर पर की श्रद्धा के कारण निर्भय और निश्चित होते है सो (हनुमान)।

आत्मलिग : आत्म ही ईश्वर का लिग सो - आत्मलिग यानी चिह्न।

शिव : कल्याण स्वरूप मगल सो शिव (शकर). शिव शब्द वेद मे भी आता है।

('भूमिपुत्र' के सोजन्य से)

* * *

लेखक की अन्य किताबें

Primer of Universal Healing (English)

હૃદયરોગનો પાયાનો ઉપચાર (ગુજરાતી)

अमेरिका के विश्वविख्यात डॉ. डीन ओर्निश एम.डी. के सीमाचिह्नरूप कार्य पर आधारित युनिवर्सल हीलिंग कार्यक्रम की, यह पुस्तक प्रेरणादायी फलश्रुतिरूप है।

*

Wealth of Food - Health of Heart (English)

આહારનો ઉપભોગ તોપણ હૃદય નીરોગ (ગુજરાતી)

यह पुस्तक हृदयरोग के दर्दीओ के लिए परहेज विषयक परंपरागत विचारधारा से भिन्न, एक नया ही पथ प्रदर्शित करती है, जिस में भोजन के आनंद को तनिक भी न छोड़ते हुए, तदुरुस्ती का आनंद लिया जा सकता है।

*

Heart Disease - A New Direction (English)

હૃદયરોગની સમસ્યા – એક નવી દિશા (ગુજરાતી)

अलगपन की भावना खास करके युवा पीढी में किस प्रकार कॉरोनरी हृदयरोग में परिणित होती है, उसकी चर्चा इस पुस्तक में की गई है और हमारी प्रचीन योग पद्धति से अलगपन को किस प्रकार दूर किया जा सकता है, उसकी जानकारी दी है।

कॉरोनरी हृदयरोग सिर्फ शारीरिक घटना है, इस हकीकत को अब चुनौती दी गई है। अब तबीबी विज्ञान भी इस बात का स्वीकार करता है कि दृश्यमान शारीरिक रोग की उत्पत्ति मे व्यक्ति की चेतना का बहुत बडा योगदान होता है।

पूर्णिमागच्छना साधु रामचन्द्रसूरिरचित 'विक्रमचरित'ना अंतमां आ० सिद्धसेने 'सिंहासनद्वात्रिंशिका'नी रचना करेली एवुं जणाव्युं छे। जो आ सत्य होय तो देशभरमां जाणीती बत्रीश पूतलीओनी वार्ताओनां मूळ आ० सिद्धसेननी कृतिमां होवानां। परन्तु अन्य पुरावाओना अभावे कशुं निश्चयात्मक कही शकाय नहीं।

आ उपरांत 'बृहत्षड्दर्शनसमुच्चय' नामनो ग्रन्थ पण आ. सिद्धसेननो रचेलो कहेवाय छे, 'जैन ग्रन्थावली'मां पण तेनो उल्लेख छे। 'तत्त्वार्थभाष्यवृत्ति'मां आ० सिद्धसेननी रचेली 'प्रमाणद्वात्रिंशिका'मांनो एक श्लोक उद्धृत करायो छे। 'प्रमाणद्वात्रिंशिका'मां आ० सिद्धसेने केवलीना प्रमाण विशे लख्युं होय ए संभवित छे।

आ० सिद्धसेने व्याकरण, ज्योतिष वगेरे विषयो पर पण ग्रन्थो रच्या होय ए असंभवित नथी। ते सिवाय पण आ०सिद्धसेननी घणी कृतिओ हशे जे आपणने उपलब्ध थतो नथी परन्तु प्राचीन लेखको तेमांथी उद्धरणो आपे छे।

'कल्याणमंदिरस्तोत्र' पार्श्वनाथनी स्तुतिरूपे छे ने तेमां ४४ श्लोक छे, तेना पर ११ टीकाओ उपलब्ध छे। बधी प्रमाणमां अर्वाचीन छे। 'भक्तामरस्तोत्र' साथेनुं एनुं साम्य स्पष्ट छे। 'कल्याणमन्दिर'नी पुष्पदन्त विरचित 'शिवमहिम्नस्तोत्र' साथे पण सरखामणो करी शकाय। 'प्रबन्धकोश' 'कल्याणमन्दिर' ने द्वात्रिंशिका कहे छे पण तेनुं आजनुं स्वरूप जोतां एम जणातुं नथो।

आ० सिद्धसेन दिवाकरनो नामोल्लेख करे छे। 'न्यायावतार'ने अंते पण 'श्रीसितपट दिवाकर' लखेलुं छे। 'सन्मतितर्क'नी पुष्पिकाओ पण आ०सिद्धसेन दिवाकरनो उल्लेख करे छे।

आ सर्व कृतिओमां एकसरखी शैली जोई शकाय छे। आ० सिद्धसेन स्वतंत्र विचारक छे अने परंपराना अंधपूजक नथी ए 'सन्मतितर्क' अने 'निश्चयद्वात्रिंशिका' उपरथी पण देखाशे। तेथी ज कोई परंपराभक्त लहियाए एमना नाम आगळ 'द्वेष्य' शब्द मूकी दीधो छे। आ०सिद्धसेनमां कवि अने तत्त्वचिंतकनुं अजब रसायण थयेलुं छे। तेमनी स्तुतिओ पण तात्त्विक विचारणाओथी भरेली छे। तत्त्वज्ञाननी विभिन्न शाखाओनुं एमनुं ज्ञान ध्यान खेंचे एवुं छे। तेमनां काव्योमांना उपमानो पण एवां ज एकसरखां आकर्षक छे। मने 'सन्मतितर्क' अने 'द्वात्रिंशिकाओ' ना रचयिता एक ज आ० सिद्धसेन लाग्या छे।

आ० सिद्धसेननुं प्रदान—

आ० सिद्धसेने जैनोमां तर्कने सुप्रतिष्ठित कर्यो अने एक विशिष्ट दृष्टिबिंदु अर्प्युं। 'न्यायावतार'ने एक असामान्य प्रदानरूपे गणावी शकाय, जेमां आ०सिद्धसेने प्रमाणोनी व्याख्या बांधी अने बौद्धमतनुं खंडन कर्युं। अनेकान्तवाद अने अभेदवादना ए महान पुरस्कर्ता छे। तेमनां स्वतंत्र अर्थघटनो पण एटलुं ज महत्त्व धरावे छे। खास करीने मति अने श्रुतनी एकता। आ०सिद्धसेने समकालीन दर्शनो पर समर्थ रीते प्रकाश पाड्यो छे।

आ० अभयदेवनो 'वादमहार्णव' अथवा तो 'तत्त्वबोधविधायिनी' टीका एक आकर ग्रंथ छे।

न्यायावतार—

जैन न्याय परनो आ प्रथम ग्रन्थ छे। तेना पर आ० सिद्धर्षि-रचित विवृति एक नोंधपात्र अंग छे। तेनी तुलना दिङ्नागना 'प्रमाणसमुच्चय' साथे करी शकाय। तेमां ३२ श्लोक छे छतां द्वात्रिंशिकाओमां तेनो समावेश करायो नथी। 'न्यायावतार'मां प्रमाणनी व्याख्या कराई छे अने छेल्ले अनेकान्तनी स्थापना।

स्तुति परक द्वात्रिंशिकाओ—

'द्वात्रिंशिकाओ'ना प्रगट पुस्तक प्रमाणे प्रथम पांच द्वात्रिंशिकाओ भगवान् जिननी स्तुतिओ छे। अगियारमी द्वात्रिंशिकामां कोईक राजानी स्तुति छे, जे संभवतः विक्रमादित्य लागे छे। अगियारमी द्वात्रिंशिकानो अभ्यास डॉ० काउझेए करेलो छे अने ते प्रसिद्ध छे। आ द्वात्रिंशिका ऐतिहासिकदृष्टिए घणी महत्त्वपूर्ण छे।

आ द्वात्रिंशिकाओमां ज आ० सिद्धसेननी कवि तरीकेनी प्रतिभा कांईक अंशे प्रगट थाय छे अने आ० हेमचन्द्रनी उक्ति 'अनुसिद्धसेनं कवयः' नी भूमिका प्राप्त करे छे। प्रथम चार द्वात्रिंशिकाओनुं नामाभिधान करायुं नथी परंतु पांचमीने अन्ते 'स्तुतिद्वात्रिंशिका' नाम आपायुं छे। आ पांच द्वात्रिंशिकाओनुं एक गुच्छ बने छे।

'प्रबन्धचिन्तामणि' प्रमाणे आ० सिद्धसेने भगवान् पार्श्वनाथ अथवा तो ऋषभदेवनी ३२ द्वात्रिंशिकाओथी स्तुति करी जेनो आरंभ

आ द्वात्रिंशिकाओमां आ० सिद्धसेननो भाषावैभव तथा छंदो परनुं प्रभुत्व देखाय छे। कालिदासनी जेम ज एमणे अनेक छंदो सहजरीते प्रयोज्या छे क्यांय आयास देखातो नथी। छंदोनुं आटलुं स्वाभाविक वहन बहु ओछा कविओमां जोवा मळे छे। आ० सिद्धसेन स्रग्धरा, वियोगिनी, पुष्पिताग्रा वगेरे छंदो तो प्रयोजे छे साथे पृथ्वी जेवा तेमना समयमां ओछा प्रचलित छंदमां आखी द्वात्रिंशिका रचे छे ते एमना शक्तिनो परिचय आपवा पूरतुं छे। एमनी भाषा धारदार अने प्रवाही छे। एमनां औचित्यपूर्ण उपमान (जेमके १-१२, २-५, २-११, १३ वगेरे) तेम ज अनुप्रास ध्यानखेंचे तेवा छे।

वाद—

आपणा देशमां वादनो प्रचार क्यारथी अने केवी रीते थयो हशे ए तो स्पष्टपणे दर्शावी शकाय एम नथी परन्तु एम लागे छे के आरंभमां वादना मूळमां जिज्ञासानुं तत्त्व रह्युं हशे पण धीरे धीरे ए तत्त्व घसातुं चाल्युं ने वादनो उपयोग सर्वोपरिता साधवाना साधन तरीके थवा लाग्यो। हजो हमणां सुधी तेनो प्रचार हतो जेने शास्त्रार्थ कहेवामां आवतो।

वेदकाळथी तात्त्विक प्रश्नो जागता अने कोईक प्रश्नना एकथी वधारे उत्तर संभवे तेमांथी वाद जागे। आगमग्रन्थो परथी जणाय छे के भगवान् महावीरनो समय वादविवादथी भरेलो हतो। घणा मत प्रचलित हता अने स्वीकृति माटे अरसपरस वाद थाय ए समजी शकाय तेवुं हतुं। न्यायशास्त्रमां वादनो उल्लेख छे, 'चरकसंहिता'मां चर्चासभानो उल्लेख छे।

आठमी द्वात्रिंशिका वादने विषय बनावे छे पण मुख्यत्वे तेमां वाद पर आकरी टीका कराई छे। 'वादोपनिषद्'मां जे चतुर विलक्षण वादीनां दर्शन थतां हतां तेने स्थाने अहीं शान्तशील जैन साधुनां दर्शन थाय छे। शक्य छे के आ तेमनी पाकट वयनी रचना होय अथवा तो आमां एमनुं हृदय व्यक्त थयुं होय, ज्यारे 'वादोपनिषद्' पोताना शिष्योना शिक्षण अर्थे समयनो तथा शासननी आवश्यकतानो विचार करी रचायुं होय। आ० सिद्धसेन चोक्स उदाहरणो आपे छे अने चित्रात्मक वर्णन आपे छे। वादीनी वर्तणूंक, तेनी उद्धताई, गर्व वगेरेनो तादृश चितार अहीं मळे छे। एक युगना दर्शन तरीके पण आ कृतिओ रस पडे तेवी छे।

जैन तत्त्वज्ञान—

उपलब्ध द्वात्रिंशिकाओमां ६,१०,१७,१८,१९ अने २० जैन तत्त्वविद्यानुं आलेखन करे छे, एमां प्रथम चारनां नाम आपवामां आव्या नथी, परन्तु तेमांना विषयवस्तुने ध्यानमां लेतां छट्ठी द्वात्रिंशिकाने आप्तविनिश्चय, दशमीने योगाचार, सत्तरमीने शिवोपाय अने अढारमीने अनुशासन नाम आपी शकाय।

आप्तविनिश्चय—

आ (छट्ठी) द्वात्रिंशिकामां आ० सिद्धसेने पुरातन मतवादीओ पर आकरा प्रहार कर्या छे। पुरातनोए जे व्यवस्था निश्चित करी छे तेने आंख मींचीने अनुसरी न शकाय एम आ० सिद्धसेन जणावे छे।

अने पुरातननी मान्यतामां स्थिरता शी रीते होई शके ? आजे जे वर्तमान छे ते थोडोक समय पसार थतां पुरातन बनशे माटे पुरा-

केवो माणस तत्त्वज्ञानने योग्य छे ते आ० सिद्धसेन दर्शावे छे श्रद्धावान्, अपायनो ज्ञाता, परीषह जीतेल, भव्य अने गुरुए आदेश आपेल (अष्टांग) योगनुं आचरण करे। आजना युगमां पण आ महत्त्वनुं छे। आ० सिद्धसेन स्पष्ट करवा मागे छे के सहु कोईने माटे आ न होइ शके। गुरु ज आनो योग्य निर्णय करी शके।

त्यार बाद पण योगनी साधना गमे त्यां न करी शकाय। पवित्र अने निष्कण्टक स्थानमां देह, प्राण अने मनने समान करी स्वस्तिकासन जेवा आसननो जय करी लेवो– एकाग्रतानी सिद्धि माटे अहीं योगनी प्रारंभिक क्रियाओ दर्शावाई छे, जेमां 'भगवद्-गीता' के 'योगसूत्र' साथेनी समानता जोई शकाशे (भग०गी०-- ६-१०-११ ; योगसूत्र साधनापाद ४६, स्थिरसुखमासनम्।) पद्मासन, विरासन, भद्रासन, स्वस्तिकासन, दंडासन वगेरे सुखा-सन छे। आ बधांमां पद्मासन वधारे जाणीतुं छे पण स्वस्तिकासन वधारे सुखसाध्य छे अने शक्य छे के आ० सिद्धसेन पोताना वैय-क्तिक अनुभव परथी स्वस्तिकासनने वधारे पसंद करे छे।

पछी आ० सिद्धसेन प्राणायामनुं फल दर्शावे छे। मनु अने पंचशीख पण आवां फल बतावे छे, जे वाचस्पति मिश्रे नोंध्यां छे। जैनदर्शन प्रमाणे योगनी प्रक्रियाओनु ज्ञान के मोक्ष जेवुं फल न होय पण आ रीते ते उपयोगी छे। तेनाथी शरीरनां जाडय वगेरे दोषो नाश पामे छे।

शुक्ल ध्यान विशे सिद्धसेने प्रमाणमां ठीक लख्युं छे। आ शुक्ल ध्यान बाद केवलज्ञान उत्पन्न थाय छे। कादववाळुं पाणी ठरी-

आ० सिद्धसेन जणावे छे के कषायमां कशो क्रम होतो नथी एटले के एक पछी बीजुं— काम पछी क्रोध ए रीते जेम 'गीता'मां दर्शावायु छे 'ध्यायतो विषयान् पुंसः........' आचार–अनाचारनुं कारण अचिन्त्य छे (जुओ 'प्रशमरतिप्रकरण' उमास्वातिकृत-२४५ कारिका)। एना विशे कशुं निश्चित कही न शकाय। जेम के घी विशे 'आयुर्वै घृतम्' एम कहेवामां आवे छे, गमे त्यारे रोगीने एनो भलामण न करी शकाय। रोगीनुं योग्य परीक्षण करो पछी योग्य लागे तो भलामण करो शकाय। घी सामान्य रीते शरीरसंपत्ति माटे सारुं गणाय पण अमुक रोगोमां अथवा तो अमुक व्यक्तिओने ते आपी न शकाय, ए ज रीते अमुक शुद्ध आचार अने अमुक अशुद्ध आचार तेवो निरपेक्ष निर्णय न करी शकाय। प्रत्येक गुणनुं जे परिणाम होय छे ते बधानुं एक स्वरूप होय छे। शुद्धि आचारात्मक होय छे। "दोषेभ्यः प्रव्रजन्त्यार्यो गृहादिभ्यः पृथग्जनाः।"

आ० सिद्धसेननुं आ महावाक्य याद रही जाय एवुं छे। आर्य पुरुषो दोषोनो त्याग करे छे ज्यारे सामान्य माणसो घर बारनो त्याग करे छे। ते समयमां आर्यसंज्ञा उत्तम पुरुषो माटे वपराती। श्री. विजयलावण्यसूरिजी संसृतिसागरमांथी पार जवानी कामनावाळा पुरुषोत्तमोने आर्यो गणावे छे।

पछी मननुं महत्त्व दर्शावायुं छे। मनथी विषयोथी दूर जवाय छे, मनथी ज एने पामी शकाय छे. 'मन ए ज मनुष्यो माटे बंध

सूचनाओ आजना युगमां पण एटलुं ज महत्त्व धरावे छे। आ युगमां ज्यारे ज्ञान कशा पण विवेक विना आपवामां आवे छे त्यारे ते शक्ति अने साधनाना विनाशरूप बनतुं होय छे। आ० सिद्धसेन प्रथम श्लोकमां ज आ तथ्य तरफ ध्यान दोरे छे। तेओ नोंधे छे के ज्ञान आपतां पूर्वे आ बधां पासां पर नजर राखवी जोईए। देश, काळ, अन्वय (कुळपरंपरा), आचार, वय, प्रकृति, शक्ति (जिज्ञासा उत्साह अथवा तो मुमूर्षा) ; आपणे जोईए छीए के 'भगवद्‌गीता' पण एनुं ज्ञान आपवा माटे शर्त मूके छे (१८-६७)।

त्यार बाद आ० सिद्धसेन शिक्षकनो आदर्श व्यक्त करे छे जेनामां बाह्य तेमज आंतरिक पवित्रता होय, जे सौम्य होय, तेजस्वी होय, जेनामां करुणा रही होय, जे स्वसमय अने परसमयनो ज्ञाता होय, जेनी वाणी सुमधुर होय ने जेणे मन अथवा तो काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि जत्यां होय ते आदर्श शिक्षक छे। आवो गुरु तो शोध्यो जडे नहीं, बीजुं बधुं होय पण 'जिताध्यात्म' न होय।

आ द्वात्रिंशिकामां आ० सिद्धसेन तेमना समयनी परिस्थति तरफ निर्देश करता होय तेवुं पण देखाय छे, जेम के चोथा श्लोकमां-

"हीनानां मोहभूयस्त्वाद् बाहुल्याच्च विरोधिनाम्।"

हीन माणसोमां व्यापकपणे मोह, अज्ञान छवायेलुं छे अने अनेक प्रकारना विरोधीओनुं बाहुल्य छे, आवा संयोगो वच्चे कल्याणप्रद शिक्षण विशे आ० सिद्धसेन लखी रह्या छे।

त्यार बाद आ० सिद्धसेन शैक्षोना विभागो दर्शावे छे, तेमना आचरण विशे दर्शावे छे। अगियारमा श्लोकमां विद्यार्थी माटे

उपलब्ध प्रतिमां एकत्रीश श्लोक ज मळे छे अने अनुष्टुपनी बे पंक्तिओ खूटे छे ते पुनाना भांडारकर इन्स्टिटट्यूटनी हस्तप्रतिमां मळी आवे छे ते अगियारमा श्लोकनी बीजी पंक्ति अने बारमा श्लोकनी पहेली पंक्ति। आम छपायेल प्रतिना श्लोकनो क्रम फरी जाय छे।

आ० सिद्धसेन प्रथम पंक्तिमां ज ज्ञान, दर्शन अने चारित्रने मोक्षना उपाय तरीके दर्शावे छे। पंडित मुख्तारजी अहीं 'उपायाः' पाठ स्वीकारी बहुवचनना उपयोग सामे वांधो ले छे अने एवी तारवणी करवा मथे छे के आ० सिद्धसेनने जाणे मोक्षना त्रण भिन्न भिन्न मार्ग अभिप्रेत होय। आ बराबर नथी। वळी, दर्शन पूर्वे ज्ञान मूकवाथी क्रम बदलाई जतो नथी, मात्र आ० सिद्धसेन अल्प ज्ञाण शब्दने पहेलां मूके छे एटलुं ज। अलबत्त, आ एक समाधान ज कहेवाय।

हवे आ० सिद्धसेन ज्ञाननुं आलेखन आरंभे छे। ज्ञान देहादिना विषयवाळुं होय छे अने ते अभिव्यक्तिना स्वरूपवाळुं होय छे। त्यार पछी तेनी शक्तिओ दर्शावी छे।

परस्परस्पृष्टगतिर्भावनापचया ध्वनिः।
स्पष्टग्राह्यश्रुते सम्यगर्थभाव्योपयोगतः ॥ ११ ॥
संघातभेदोभयतः परिणामाश्च संभवः।
बहुस्पृष्टगमद्वयादिस्नेहरौक्ष्यातिशायनात् ॥ १२ ॥

संभव माटे 'तत्त्वार्थसूत्र' संघात अने भेद बे कारण

दृष्टिप्रबोध –

तेरमी द्वात्रिंशिका दृष्टिप्रबोधनो जेम बोसमी द्वात्रिंशिकाने दृष्टिप्रबोध नाम आपवामां आव्युं छे अने आपणे तेमां दृष्टिवाद विशे आलेखन थयुं होय तेवी अपेक्षा राखी शकीए । आ द्वात्रिंशिकानुं नाम आपणने खोवायेला 'दृष्टिवाद' नामना बारमा अंगनी याद आपे छे । शक्य छे के आ० सिद्धसेनना समयमां दृष्टिवाद नामनुं बारमुं अंग जाणीतुं होय ने आ० सिद्धसेने दृष्टिवादने अहीं संक्षेपमां रजू कर्यो होय ।

आ संदर्भमां में वेबर अने एम. डी. महेता द्वारा आपवामां आवेली विषयसूची तपासी । तेमां चौद पूर्वोमांनुं प्रथम छे उत्पाद । आ द्वात्रिंशिका पण ते शब्दथी ज आरंभ पामे छे । आपणी पासे माहितो पण अपूरती छे अने ते प्रमाणित नथी एटले कशुं चोक्कस कही न शकाय । शक्य छे के प्रथम पूर्वमां उत्पाद, व्यय वगेरेनुं आलेखन थयुं होय ।

आ० सिद्धसेननी स्तुतिओ जेटली प्रसिद्ध छे तेटली तेनी बीजी कृतिओ नथी अने तेथी ते शुद्ध रूपमां जळवाई नथी एटले तेमांथी सुव्यवस्थित अर्थ अवगत करवानुं काम दुष्कर छे । पं० सुखलालजी अने दोशीजीए पण आ ज मुश्केली अनुभवी छे । पाठांतर पण झाझां प्राप्त थतां नथी जे मददरूप बनी शके । आ संयोगोमां श्रीविजयलावण्यसूरिजीनुं काम घणुं महत्त्व धरावे छे ।

आ० सिद्धसेन भारपूर्वक जणावे छे के म० महावीर सिवाय

'वेदवाद' शब्द आ० सिद्धसेनना समयमां प्रचलित हशे। गीतामां अने प्राचीन साहित्यमां आ शब्द घणीवार वपरायेलो जोवा मळे छे, ज्यारे ब्राह्मणदर्शन जेवी संज्ञा प्रचलित थई नहीं होय त्यारे ते दर्शाववा वेदवाद शब्द वपरातो हशे। 'गीता'मांना तेना उल्लेख परथी ज एम जणाई आवे छे के कर्मकांडपरायण ब्राह्मण-धर्म माटे आ शब्द प्रयोजातो परन्तु ते एक जुदो अभ्यास मार्गी के छे।

न्यादर्शन--

बारमी द्वात्रिंशिकामां न्यायदर्शननुं आलेखन थयुं छे, जेनो मुख्य आधार ग्रंथ छे गौतमकृत न्यायसूत्र। बारमी द्वात्रिंशिका-मां न्यायसूत्र साथेनां अनेक साम्य दर्शावी शकाय एम छे। आ० सिद्धसेने तेमां हेतु अने हेत्वाभासनी चर्चा करी छे। अहीं तहीं गौतमनी परिभाषा करतां जुदी परिभाषा जणाशे। केटलाक सिद्धां-तोनी चर्चा पण कराई छे। केवी रीते व्यक्ति वादमां विजय प्राप्त करे छे अने तेनी निर्बलताओ कई छे ते पण दर्शाव्युं छे। एवुं जणाय छे के आ० सिद्धसेनने वादमां विशेष रस छे। नृपगोष्ठीओमां वक्तृत्वकौशल्य बतावीने धर्म, अर्थ अने कीर्ति मेळवी शकातां हशे। ते युगमां विचार पण शी रीते करी शकाय?

सांख्यप्रबोध-

तेरमी द्वात्रिंशिकानुं नाम सांख्यप्रबोध अपायुं छे अने तेमां भारतीय दर्शनोमांना एक प्राचीन सांख्य दर्शननो विचार करवामां आव्यो छे। आ० सिद्धसेन दिवाकरनी आ कृतिनुं महत्त्व बे प्रकारे

आ० सिद्धसेन प्रत्यक्ष तथा अनुमाननी व्याख्या वार्षगण्यनी स्वीकारता होय एम जणाय छे । अहीं सांख्यदर्शनना अमुक पासांने ज स्पर्शवामां आव्यां छे । आ कृतिमां आ० सिद्धसेने सर्ग अने अन्य तत्त्वोनी उत्पत्तिनी चर्चा करी छे । सत्त्व वगेरे गुणो ज्यारे सम अवस्थामां होय तेने प्रकृति कहेवामां आवे छे परंतु ज्यारे आ समतुला विचलित थाय छे त्यारे सृष्टिनी उत्पत्ति थाय छे । पुरुष आम तो अकर्ता छे ऐक्यने कारणे परन्तु अधिष्ठान शक्तिने लीधे कर्ता पण छे ।

'सांख्यप्रबोध'मां प्रमाणोनी व्याख्या अपाई छे अने प्रकृति तथा सर्गनुं वर्णन करायुं छे । इंद्रियोनां कार्यो पण दर्शावायां छे । सिद्धि, तुष्टि अने भूतसर्गनुं पण आलेखन थयुं छे । आ० सिद्धसेन कोई चोक्कस कृतिने नजर सामे राखी आलेखन करता होय तेम जणातुं नथी अथवा तो तेमनी नजर सामे जे साहित्य हशे ते आपणने उपलब्ध थतुं नथी तेथी आ कृतिने मौलिक ग्रंथ जेटलुं महत्त्व मळे छे ।

वैशेषिकदर्शन—

चौदमी द्वात्रिंशिकामां वैशेषिक दर्शननुं आलेखन थयुं छे । कणादनां सूत्रोनी जेम ज आ कृतिमां पण धर्मनी चर्चा कराई छे । तेमां द्रव्य, प्रमाण वगेरेनुं आलेखन करायुं छे । वैशेषिकोनो परमाणु सिद्धांत पण अहीं जोवा मळे छे । द्रव्योना उद्भव काळ, दिशा ध्वनि, अविद्या वगेरेनुं पण तेमां आलेखन थयुं छे । अदृष्टथी क्रियाओ थाय छे एवुं पण दर्शावायुं छे ।

आ० सिद्धसेनना समयनुं चित्र —

घणा लेखकोनी कृतिओमांथी तेमना समयनुं चित्र उपसतुं होय छे। आवी कृतिओ ते युगना रंगो प्रतिबिंबित करे छे जे सूक्ष्म अवलोकनथी देखाई आवे छे। आ० सिद्धसेननी कृतिओ प्रमाणमां टूंकी, अर्थगर्भ अने मोटे भागे तत्त्वचिंतनने विषय बनावे छे। आम छतां तेमां आ० सिद्धसेनना युगनुं वातावरण छेक नथी आव्युं एम न कही शकाय, परंतु बीजा लेखकोनी कृतिओनी तुलनामां आ कृतिओ ओछी पारदर्शक छे। एक तो एमणे बत्रीश पद्योनुं बन्धन स्वीकार्युं होवाने कारणे क्यांय विस्तार करातो नथी, ज्यां आवी विगतनुं आलेखन वधारे संभवित बने।

एवुं जणाय छे के आ० सिद्धसेननो युग घणो उथलपाथलोनो युग हशे। पंडितोना एक सामान्य माध्यम तरीके संस्कृत भाषा हजी प्रसिद्धि पामी रही हशे, जेने लीधे अश्वघोष जेवा बौद्ध कविओ अने आ० सिद्धसेन जेवा जैन कविओ संस्कृतमां तेमनी रचनाओ करवा प्रेराया हशे। तर्क सुप्रतिष्ठित बनी रह्यो हतो अने जैनोमां आ० सिद्धसेन पछी तेनो घणो विकास थयो देखाय छे। आ० सिद्धसेननी तर्कप्रीति ए हकीकत परथी घणी जणाई आवे एम छे के आ० सिद्धसेन आगमसाहित्यमां पण जे कांइ तर्क विरुद्धनुं होय तेने स्वीकारवा तैयार नथी। आ एक युगलक्षण जणाय छे। धर्म ने तत्त्वज्ञान माटे अस्तित्वनो संघर्ष चालतो हतो अने दरेक धर्मने पोतानुं गौरव टकावी राखवा आ संघर्षमांथी पसार थवुं पडे एम हतुं। जैनधर्मने पण घणा विरोधीओ हता

अने तेनी पूर्वे पण तेना कुळमां पराक्रमी राजाओ थया हता । आ राजा मात्र वीर हतो, एटलुं ज नहि, राजनीतिनो पण जाणकार हतो, उदारचरित हतो अने शत्रुप्रदेशोने पण समृद्ध बनावतो। तेनी आ सिद्धिमां तेना सचिवोनुं पण सारुं एवुं प्रदान हतुं । एकंदरे तेनुं शासन शांतिपूर्ण हतुं अने लोको तेने प्रतापे समृद्ध बन्या हता ।

बे पेढीओ वच्चेनो संघर्ष सतत चाल्यो आवे छे परंतु आ० सिद्धसेनना समयमां ते वधारे प्रबळ जणाय छे। दरेक नवा विचार सामे मों फेरवी लेनार सामे (आ० सिद्धसेन ने कालिदासनी जेम) झझूमवुं पड्युं हतुं । तेमनो आ संघर्ष साहित्यनुं स्वरूप, शैली अने भाषा अंगेनो जणाय छे । आ० सिद्धसेनना समयमां दिव्य त्रिमूर्तिनो विचार प्रस्थापित थई चूक्यो हतो अने ते त्रणे देवनां कार्यो जुदां अंकाइ चूक्यां हतां । वैष्णव संप्रदाय सारो जाणीतो बनेलो हतो । मंत्रशक्तिमां विश्वास हतो । स्त्रीओ शृङ्गारनां प्रसाधनोनो उपयोग करती । राजाओ सचिवोना सहकारमां साम, दाम, दण्ड, भेद तथा गुप्तचरोनो उपयोग करता । विरोधीओने पोताना पक्षना करवा दान अपातां । आ०सिद्धसेनना समयमां नियतिवादी आजीविकोनुं सारुं एवुं चलण हतुं। आ० सिद्धसेननी कृतिओने आधारे अहीं तेमना समयनुं आछुं-झांखुं चित्र उपसाववा प्रयत्न कर्यो छे ।

बहुमुखी प्रतिभा–

आपणे जीवनमां आपणी आसपास मोटे भागे साधारण माणसो जोइए छीए पण भाग्ये ज कोई प्रतिभासंपन्न व्यक्ति साथे

तेमनां संवेदनो कालिदासनी सरखामणीमां ऊभां रही शके तेवां छे (श्लो० १९) । विषय प्रस्तुत करवानी एमनी रीत काव्यात्मक छे जेमके 'गुणवचनद्वात्रिंशिका' (श्लो० ३–१३) । ते ज द्वात्रिंशिकामां (श्लो १४) मां युद्धनुं वातावरण योग्य शब्दो द्वारा ऊभुं करे छे अने (श्लो० १७) मां शरद्नी मधुरताने शब्दोमां गुंजती करे छे । आ० सिद्धसेन व्याजस्तुति अने दृष्टांत अलंकारना चाहक लागे छे । ए ज रीते उपमामूलक अलंकारो पण प्रयोजे छे परंतु पछीना युगना कविओनी जेम एमनी कृति अलंकारना अतिशय भारथी लदाई नथी । तेमनामां माधुर्य देखाय छे अने घणुखरुं वैदर्भी-रीतिनो आश्रय ले छे । तेमनां उपमानोमां ताजगी छे, ते अंधकारने भमराना पग साथे सरखावे छे, एवां तो घणां उदाहरणो आपी शकाय । तेमनी रचनाओमां हास्य कटाक्षनी सूझ पण नोंधपात्र छे । आ० सिद्धसेन वादीओने श्वान, बग अने अभिनेता गणावे छे अने वादने कुक्कट युद्ध साथे सरखावे छे। वास्तवमां वाद विशे द्वात्रिंशिका रमुज भरेली छे। आ० सिद्धसेन कवि अने तत्त्वचिंतक छे अने एमना सामर्थ्यवाळा कविओ जैनोमां ओछा छे तेथी ज एमने आठ प्रभावकोमां कवि प्रभावक गणवामां आव्या छे ।

वादी—

आ० सिद्धसेननी कृतिओ अने एमना जीवननी रूपरेखा एमनी एक मुखे वादी तरीकेनी प्रतिभाने प्रकाशित करे छे। वादनां जे रहस्यो आ० सिद्धसेने जे उद्घाटित कर्यां छे। तेज एमनी असामान्य बुद्धिमत्ता प्रगट करवा पूरतां छे। जो के आ कृतिनुं चरकसंहिता साथे कंइक साम्य छे पण तेमांनुं साणुखरुं

द्वात्रिंशिकानुक्रमः ।

अर्हम् ।

विक्रमादित्यनृपालप्रतिबोधकेन वादिवृन्दारकवृन्दवारणपञ्चाननेन कमनीयतमकवितालतालवालकल्पेन तुलनातीतकल्पना-शिल्पशिल्पिशेखरेण सूरिशेखरेण भगवता श्रीसिद्धसेनदिवाकरेण प्रणीता—

द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिकाः ।

[प्रथमा द्वात्रिंशिका]

तपोगच्छाधिपति-शासनसम्राट्-सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-जगद्गुरुश्रीविजय-नेमिसूरीश्वरपट्टालङ्कारेण व्याकरणवाचस्पति-शास्त्रविशारद-कविरत्नेति-पदालङ्कृतेन विजयलावण्यसूरिणा विरचिता—

किरणावली नाम विवृतिः—

यज्ज्ञाने भाति विश्वं करतलफलवद् योगिभिर्यत्स्वरूपं
ध्येयं वाणी यदीया विलसितभुवने तत्त्वमात्रेऽप्यबाध्या ।
कामक्रोधादिवर्गो विलयमुपगतो यत्र यं पूजयन्ति
पूज्या अन्ये तमीडे जिनवरमवरं वर्धमानं वरेण्यम् ॥ १ ॥—स्रग्धरा

वाग्देवी यत्र नव्याऽमलगमकलिताऽनल्पतर्कप्रगल्भा
स्याद्वादोद्गारदक्षा जयति बुधवरैर्भाविताऽर्थाऽनवद्या ।
तं नव्यं सिद्धसेनं विमलमतिगुणं कल्पनाशिल्पिमुख्यं
नव्यस्तुत्यालिदक्षं सततमभिनये मानसेऽभीष्टसिद्धयै ॥ २ ॥—स्रग्धरा

यस्य व्याकृतिशास्त्रचर्वणकला कृत्या समुज्जृम्भते
शास्त्रार्थे प्रतिवादियुक्तिदलनं विद्योतते सर्वतः ।
न्यायाद्यर्थविचारणाऽपि विमला यस्य क्रियासु स्थिता
भक्त्या तं प्रणमामि हृत्कमलगं श्रीनेमिसूरिं गुरुम् ॥ ३ ॥—शार्दू०

द्वितीयान्तं 'जिनवर्धमानम्' इत्यस्य विशेषणम् , यतः 'जिनवर्धमानं स्तोष्ये' इत्यनेन जिनवर्धमानकर्मकस्तुतिक्रियाकर्तृत्वप्रकारकसिद्धसेनदिवाकरविशेष्यकप्रतीतौ जातायामपि कीदृशं जिनवर्धमानमित्याकाङ्क्षोत्थितैव, अप्रकृष्टस्य स्तुतिकर्मत्वासम्भवात् , अतस्तत्प्रकर्षावगमक विशेषणमुपादेयमेवेति ।

"देवदत्तः स्वयं गच्छेत् त्वं वीक्षस्व स्वयं तथा ।
अहं स्वयं न शक्नोमीत्येवं लोके प्रयुज्यते ॥" [ ]

इति वचनात् प्रथम-मध्यमोत्तमपुरुषेष्वात्मस्वविशेषेण स्वयंशब्दप्रयोगात् ,

"इदं रूप्यमिदं वस्त्रमिति यद्वदिदं तथा ।
असौ त्वमहमित्येषु स्वयमित्यभिधीयते ॥ १ ॥
स्वयमात्मेति पर्यायौ तेन लोके तयोः सह ।
प्रयोगो नास्त्यत· स्वत्वमात्मत्वं चान्यवारकम् ॥ २ ॥" [ ]

इत्यादिवचनात् स्वयम्भुवमित्यस्य आत्मभुवमित्यर्थः; "भूः सत्तायाम्" इति धातुपाठात् प्रकृते भूधातोः सत्त्वमेवार्थः, "उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्" [तत्त्वार्थ० अ० ५, सू० २९] इति सूत्राद् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तत्व सत्त्वम्, तत्र स्वयंशब्दार्थानुगमनाद् आत्मना यदुत्पद्यते, आत्मना यद् विनश्यति, आत्मना यद् ध्रुवं तत् स्वयम्भूशब्दवाच्यमिति, प्रतिक्षण वस्तुमात्रं केनचिद् रूपेणोत्पद्यते केनचिद् रूपेण विनश्यति केनचिद् रूपेणावतिष्ठत इति सद् भवति, जिनवर्धमानोऽपि वस्तुसामान्यान्तर्गतः केनचिद् रूपेणोत्पद्यमानत्वात् केनचिद् रूपेण विनश्यमानत्वात् केनचिद् रूपेण स्थीयमानत्वात् सन् स्यादेव, तावताऽन्यवस्तुभ्यो वैशिष्ट्यं न लभ्यत इति तद्विशेषणसामर्थ्यात् स्तुतियोग्यत्वं नायाति, अतः 'सन्तम्' इत्यनुक्त्वा 'स्वयम्भुवम्' इत्युक्तम् , राग-द्वेषादिशत्रुगणमुक्तात्मस्वरूपस्य जिनवर्धमानस्य तदवस्थायां पूर्वक्षणे वर्त्तमानक्षणेऽनागतक्षणे चोपयोगलक्षणात्मकात्मकात्मसामान्यरूपेणैव पूर्वक्षणवर्तित्वविशिष्टात्मरूपेण विलयो वर्त्तमानक्षणवर्तित्वविशिष्टात्मरूपेणोत्पादो निर्विशेषितात्मस्वरूपेणावस्थानमित्युत्पाद-व्यय-ध्रौव्यावच्छेदकात्मनो विशेषणविनिर्मोकेण विशेष्यीभूतस्यात्मसामान्यरूपतयोत्पाद-व्यय-ध्रौव्यलक्षणसत्त्वमित्यन्यस्माद् व्यावर्त्तकत्वेन भवति 'तद्विशेषणस्य स्तुत्युपयुक्तवैशिष्ट्यावेदकत्वम्; यद्यप्युक्तदिशोत्पादादित्रयावच्छेदकत्वमात्मसामान्यस्य

गच्छन्ति भगवदुपदिष्टोगमेनेत्यागमद्वाराऽखिलहिताहितमार्गप्रकाशत्वेन जिनवर्धमानोऽयं भवति भूतसहस्रनेत्ररूपस्तम्; यद्वा भूतानि—पूर्वं जातानि, सहस्रं नेत्राणि यस्य स भूतसहस्रनेत्रस्तम्, अनादौ संसारे भगवानपि स्वर्लोकाधिपतिरिन्द्रो बभूवेति, अनेन यद् यद् विभूतिमत् सत्त्व लोकेऽवलोक्यते तत्तद्रूपेणानादौ ससारे जात एव भगवानिति तत्तद्रूपेणापि स्तुत्योऽयमिति व्यज्यते; अथवा भूतः—प्रथमं जातः, सहस्रनेत्रः—इन्द्रो यस्य स भूतसहस्रनेत्रस्तम्, "उपेन्द्र इन्द्रावरजः" इति कोशादिन्द्रस्य कनिष्ठभ्रातोपेन्द्रो विष्णुस्तद्रूपोऽयमिति ये विष्णुमीश्वरबुद्धयोपासते वैष्णवास्तेषामप्युपास्योऽयमिति व्यज्यते; यद्वा भूतसहस्रस्य—प्राणिसहस्रस्य नेत्रं यस्मिन् स भूतसस्रनेत्रस्तम्, सहस्रेत्युपलक्षणं सम्भवत्सङ्ख्यामात्रस्य, तेन सर्वेषा प्राणिना यस्मिन्नाप्तत्वदृष्टि संजाता, य सर्वेऽपि प्राणिन आप्तत्वेन पश्यन्तीति यावत्, एतावता सर्वोपास्योऽयमिति व्यज्यते, यद्वा "भैरवो भूतनाथश्च" इत्यादिवचनाद् भूतनाथं शिवमित्यर्थ., एतेन शैवानामप्ययमुपास्य इति व्यज्यते ।

पुन. किम्भूतम् ? **अनेकमिति**—एकस्य सत उत्पाद-व्ययावनेकरूपतामन्तरेण नोपपद्येते, न च तावन्तरेणोत्पाद-व्यय-ध्रौव्यलक्षण सत्त्वं सम्भवतीति-पर्यायार्थिकनयेन पर्यायरूपत्वमेव वस्तुन इति पर्यायाणामनेकत्वादनेकरूपम्, प्रकृते गुण-गुणिनोः कथञ्चिदभेदात् केवलज्ञान-दर्शन-चारित्रैतद्गुणत्रयात्मकत्वेनानेकम्, तथा धर्म-धर्मिणो. कथञ्चित्तादात्म्यसम्बन्धस्याभ्युपगमेनानन्तस्व-परपर्यायात्मकधर्मात्मकत्वेनानेकम्, एतेन साक्षात् परम्परया वा स्वसम्बन्धिस्व-पररूपाभ्या समस्तमेव विश्व व्याप्नोत्यसौ विषयतया केवलज्ञानादिरूपेण चेति व्यापकत्वाद् यदि हरिर्विष्णुरिति गीयते तदाऽयमपि विष्णु, दशावतारादिशालित्वेनानेकरूपत्वाद् यद्युपास्यो विष्णुस्तदा सर्वदैवानेकरूपत्वात् कथं नायमुपास्य इति व्यज्यते । पर्यायदृष्टयोत्पाद-व्ययभाजनत्वेन यथाऽनेकत्वमस्य तथा द्रव्यार्थिकदृष्टया ध्रौव्यभाजनत्वेनैकत्वमप्यस्येत्याह—

एकाक्षरभावलिङ्गमिति—एकः—अनेकानुगतः, अक्षर—अविनाशी, यो भावः—सामान्यात्मा तिर्यक्सामान्यरूप ऊर्ध्वतासामान्यरूपश्च, तदात्मनालिङ्ग्यते ज्ञायते इत्येकाक्षरभावलिङ्गस्तम्, तिर्यक्सामान्यं च विभिन्नदेशावस्थितानेक-

घटते; अथवा एकाक्षरम्–ओङ्कारस्वरूप यस्य भावस्वरूपप्रतिपादकत्वेन भावलिङ्गं स एकाक्षरभावलिङ्गः, तम् , जिनवर्धमानो हि नाम-स्थापना-द्रव्य-भावभेदेन चतुर्धा, तत्र यस्य कस्यचित् जिनवर्धमान इति नाम क्रियते स नामजिनवर्धमान , जिनवर्धमानस्य प्रतिकृतिः सद्भूताऽसद्भूता या स्थाप्यते सा स्थापनाजिनवर्धमानः, योऽसौ जीवो जिनवर्धमानस्वरूपेणोत्तरकालं परिणमिष्यति स द्रव्यजिनवर्धमानः, यश्च जिनवर्धमानो घातिज्ञानावरणीयादिकर्मचतुष्टयं सर्वथोन्मूल्याऽघातिकर्मचतुष्टयमुपभोगेन क्षपयितुं तीर्थादिक्रियां कुर्वन्नास्ते स भावजिनवर्धमानः, तस्य प्रतिपादक ओङ्कार इति, एतेनाकारोकार-मकारा रजोगुणादियुक्ताना ब्रह्म-विष्णु-रुद्राणा प्रतिपादकाः, तत्सङ्घटितमूर्तिश्चोङ्कारस्तुरीयस्य निर्गुणस्य सदाशिवस्य प्रतिपादकः, तं सदाशिव शैवा ईश्वरवुद्धयोपासते, निर्विशेषितलिङ्गस्वरूपतया च लोके प्रसिद्धत्वान्महादेवस्तथाभूत एव पूज्यते, अतो जिनवर्धमानोऽपि विशिष्टलिङ्गस्वरूपतयोपवर्णितो विशिष्टस्य शुद्धेन सह कथञ्चिद्भेदाच्छुद्धलिङ्गस्वरूपोऽपीति शैवानामप्युपास्य इति व्यज्यते ।

पुनः कीदृशम् ' **अव्यक्तम्** असमदादिप्रत्यक्षागोचरम् , तेन स्वसंवेदनप्रत्यक्ष-सर्वज्ञप्रत्यक्षविषयत्वेऽपि न क्षति , अस्मदादिप्रत्यक्षाविषयत्वस्य परमाण्वादि-साधारणत्वेऽपि स्वयम्भूत्वादिगुणसहकृतस्य तस्योपास्यत्वप्रयोजकोत्कर्षविशेषाधायकत्व सम्भवति, अस्मदादिप्रत्यक्षागोचरगुणविशेषत्व वाऽव्यक्तत्वम्, तस्य च परमाण्वाद्यगतत्वेनोत्कर्षविशेषाधायकत्वं सम्भवति' यथा परमाण्वादीनामस्मदादि-प्रत्यक्षागोचरत्वेऽपि धर्मा-ऽधर्मयोरेवादृष्टत्वं तथेदमपि जिनवर्धमानस्यैवेति, प्राकृतिकवैकृतिकादिबन्धेषु येऽव्यक्तं प्रधानमुपासते तेषां प्राकृतिको बन्ध इति साङ्ख्या आमनन्ति, अव्यक्त–प्रधानमीश्वरबुद्धया चिन्तयता दशमन्वन्तरसमयं यावद् विगतज्वरत्वेनावस्थानम्,

"दशमन्वन्तराणीह तिष्ठन्त्यव्यक्तचिन्तकाः ।
बौद्धा दश सहस्राणि सहस्र त्वाभिमानिकाः ॥ ७॥" [ ]

इति वचनात् , बुद्ध्यहङ्कारादयः प्रकृतेर्व्यक्तीभवन्ति–आविर्भवन्तीति व्यक्त-शब्दप्रतिपाद्या', प्रकृतिस्तु मूलकारण न कुतश्चित प्रादुर्भवतीत्यव्यक्तशब्दप्रतिपाद्या

पुनः किम्भूतम् ? **समन्तसर्वाक्षगुणं** समन्तात्–सर्वप्रकारतः, सर्वेषाम्, अक्षाणाम्–आत्मनाम्, गुणाः–ज्ञानादयो यत्र स समन्तसर्वाक्षगुणस्तम्. यद्यपि यस्य कस्याप्येकस्यात्मन एकोऽपि गुण एकेनापि प्रकारेण कथञ्चित्तादात्म्यलक्षणाविष्वग्भावसम्बन्धेन नान्यात्मनि वर्त्तत इति सर्वप्रकारेण सर्वात्मसम्बन्धिगुणवत्त्वलक्षणसमन्तसर्वाक्षगुणत्व जिनवर्धमानस्य न सम्भवति तथापि मतिज्ञानादयो ज्ञानादिभेदा नात्मनो गुणाः "सहभाविनो गुणाः, क्रमभाविनः पर्यायाः" [ ] इति सूत्रबलात् सहभाविन एव गुणत्वेन क्रमभाविनां मतिज्ञानादीना गुणत्वाभावात्, किन्तु निर्विशेषिता ज्ञानादय एव गुणाः, जैनमते स्वतोऽनुवृत्तिस्वभावा ज्ञानादय एव सामान्यमिति तद्रूपेण सर्वेषामात्मना गुणा जिनवर्धमाने वर्तन्त इति ज्ञानादीनां सहभावित्वनिबन्धना ये च प्रकारास्तैः सर्वैरपि कर्मावरणविगमदशायां जिने ज्ञानादय. सन्ति, ते च प्रकाराः सर्वविषयावभासनादय एव न तु मतिज्ञानत्वादय इति; यदि च सामान्यरूपेणान्यात्मगुणानां तत्र सद्भावेऽपि विशेषरूपेण स्वतोव्यावृत्तिलक्षणेन न सद्भावः, सोऽपि च गुणेषु सर्वदाऽवतिष्ठमानः सहभावित्वनिबन्धन एवेति विभाव्यते तदा सर्वात्मवृत्तिगुणवृत्तिसामान्याश्रयगुणानां सर्वप्रकारेण सहभावित्वप्रयोजकेनाधारत्वमेव समन्तसर्वाक्षगुणत्वम्, तच्च जिने समस्तीति; अथवा समन्ततः सर्वेऽक्षगुणा यस्य स समन्तसर्वाक्षगुणस्तम्, तथा च जिनवर्धमानस्यैवात्मन. सर्वे ज्ञानादयो गुणा अनावृताः सन्तः समन्ताज्जिनवर्धमाने वर्त्तन्त इति समन्तसर्वाक्षगुणत्वमुपपन्नम्, अस्मदाद्यात्मना सर्वाक्षगुणा आवृतत्वान्न समन्तत इति भवत्येतदुत्कृष्टत्वनिमित्तत्वादुपास्यत्वप्रयोजकमिति ।

पुनः कीदृशम् ? **निरक्षमि**ति–इन्द्रियवाचकमक्षपदमत्राक्षव्यापारपरम्, तथा चाक्षव्यापाररहितमित्यर्थः, तेन ससारे विहरमाणस्य जिनवर्धमानस्य चक्षुरादीन्द्रियसद्भावेऽपि न क्षतिः, तदानीं सर्वेन्द्रियविषयाणा रूप-रसादीना केवलालोकेनैवालोक्यतस्तस्य प्रयोजनाभावेन चक्षुरादीन्द्रियव्यापाराभावात् मुक्तौ तु निरक्षत्वमिन्द्रियरहितत्वमेव, अनन्तराभिहितधर्मसम्वलितस्य तस्योत्कर्षप्रयोजकत्वम्, अन्यथेन्द्रियव्यापाररहितत्वस्येन्द्रियरहितत्वस्य वा घट-पटादिजडसाधारणस्योत्कर्षानाधायकत्वेनोपास्यत्वप्रयोजकत्वं न भवेत्, सर्वाक्षगुणस्य निरक्षत्वमापा-

"ज्ञो ज्ञेये कथमज्ञः स्यादसति प्रतिबाधरि ? ।
सत्येव दाह्ये नह्यग्निः क्वचिद् दृष्टो न दाहकः ॥८॥" [ ]

इति वचनात्, यथा दाहकस्वभावस्य वह्नेर्दाह्यस्वभावतृणादिसन्निधाने दाहप्रतिबन्धकमण्याद्यसमवधाने च दाहकत्वमेव स्वसम्बद्धतृणादीनां नादाहकत्वम्, तथा जानातीति ज्ञः, तत्स्वभाव आत्मा, ज्ञायते–ज्ञानविषयो भवतीति ज्ञेयः, तस्मिन् पदार्थे, यत्र कुत्रापि देशे यदा कदापि काले वर्तमाने सति, अवभासप्रतिबन्धककर्मावरणविगमे च कथम् ?–न कथञ्चित्, ज्ञेयस्वभावपदार्थमात्रविषयकज्ञानरहितो भवेदित्युक्तवचनार्थः, ज्ञानस्य सर्वविषयत्वस्वभावत्वेऽपि निश्शेषत आवरणकर्मक्षयासंभवात् प्रतिबन्धके विद्यमाने सर्वविषयावभासनं न सम्भवतीति न शङ्कनीयम्, 'यदुत्कर्षे यदपकर्षस्तदतिशयितोत्कर्षगमने तदत्यन्तापकर्षः' इति व्याप्तेर्वह्नेरुत्कर्षातिशये जलस्यात्यन्तापकर्षदर्शनाज्ज्ञानोत्कर्षे दोषावरणापकर्षस्य दर्शनेन ज्ञानात्यन्तोत्कर्षे पुरुषविशेषे दोषावरणात्यन्तापकर्षस्य संभवात्, तदुक्तम्—

"दोषाऽऽवरणयोर्हानिर्निश्शेषाऽस्त्यतिशायनात् ।
यथा क्वचित् स्वहेतुभ्यो बहिरन्तर्मलक्षय ॥ ९ ॥" [ ]

अत्र दोषाऽऽवरणहानितरतमभावः क्वचिद् विश्रान्तः, तरतमभावत्वात्, यो यस्तरतमभावः स क्वचिद् विश्रान्तः, यथाऽणुपरिमाणतरतमभावः परमाणौ महत्परिमाणतरतमभावो गगनादौ वा, तरतमभावश्च ज्ञाने दोषा-ऽऽवरणहानौ चेति, तस्मादस्ति तर-तमभावविश्रान्त्याश्रयो दोषावरणहानिर्ज्ञानातिशयश्चेति यस्तरतमभावविश्रान्त्याश्रयदोषावरणहानिमान् तथाभूतज्ञानवांश्च स सर्वगतावभासस्तम्, सर्वज्ञनिराकरणपरमीमांसकमतखण्डनं विस्तरतः सम्मतितर्कादाविति ।

पुनः कीदृशम् ? **अतीतसंख्यानम्** अतीतम्–अतिक्रान्तं, सङ्ख्यानं–गणितशास्त्रं ज्योतिश्शास्त्रं च येन सोऽतीतसङ्ख्यानस्तम्, अमुकतिथि-नक्षत्र-करणयोगाद्याकलितमुहूर्ते जातः पुमानीदृशगुणसम्पन्नो भवतीत्यावेदकं ज्योतिश्शास्त्रं यस्मिन् पुरुषधौरेये जिनवर्धमाने वचनातिक्रान्तानल्पगुणविशेषशालित्वेनावगमयितुं न प्रगल्भते, वचनविशेषसन्दर्भमयस्य ज्योतिःशास्त्रस्यानभिधेयगुणप्रतिपाद-

लोकलोकः, अर्शआदित्वादच् प्रत्ययः, तम्, अलोक-लोकसम्बन्धित्वं चास्य तद्विषयकप्रत्यक्षवत्त्वेन । उपेन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ ७ ॥

पुनः किम्भूतम् ? **कुहेतु-तर्कोपरतप्रपञ्चसद्भावशुद्धाप्रतिवादवादं** कुत्सितौ यौ हेतु-तर्कौ, हेतोः साध्याविनाभाव-पक्षधर्मतोभयशून्यत्वं कुत्सितत्वम्, यत्र पक्षधर्मता विद्यते साध्याविनाभावश्च नास्ति तत्र साध्याविनाभावराहित्यप्रयोज्यं निरुक्तोभयशून्यत्वम्, यत्र साध्याविनाभावो विद्यते पक्षधर्मता च नास्ति तत्र पक्षधर्मताराहित्यप्रयोज्य निरुक्तोभयशून्यत्वम्, तर्कस्य—जैनमते साध्यहेत्वविनाभावग्राहकोहाख्यप्रमाणरूपस्य सर्वोपसंहारेण शब्दा-ऽर्थयोर्वाच्यवाचकभावसम्बन्धग्राहकस्य वा, साध्याविनाभावविरहिणि साध्याविनाभावग्राहित्व, तदवाचके शब्दे तदर्थवाचकत्वग्राहकत्व, तदवाच्येऽर्थे तच्छब्दवाच्यत्वग्राहकत्वं वा कुत्सितत्वम्, न्यायमते व्यभिचारशङ्कानिवर्तकत्वेन व्याप्तिग्रहोपयोगी तर्को व्यापकाभाववत्तया निर्णीते धर्मिणि व्याप्यारोपेण व्यापकारोपलक्षणः, यथा क्वचिद् वह्निविरहवत्यपि धूमो भविष्यतीति व्यभिचारशङ्कानिवर्तको धूमो यदि वह्निव्यभिचारी स्यात् वह्निजन्यो न स्यादिति, तस्य कुत्सितत्वमिष्टापादनरूपत्वमापाद्या-ऽऽपादकयोर्व्याप्त्यभावश्च, विपयपरिशोधकश्च तर्क आत्माश्रया-ऽन्योन्याश्रय चक्रका-ऽनवस्था-लाघव-गौरवादिस्तेषामपि कुत्सितत्वमिष्टापादनादिरूपत्वम्, ताभ्यां कुहेतु-तर्काभ्यामुपरतः कुहेतुतर्कोपदर्शनरहित इति यावत्, प्रपञ्चस्य—जगतो यः सद्भावः—वास्तविकसत्त्वं तेन, शुद्धः—विषयाशुद्धिरहितः, अप्रतिवादः—न विद्यते प्रतिघातको वादः—राद्धान्तो यस्य सोऽप्रतिवादः, कुहेतुतर्कोपरतः प्रपञ्चसद्भावशुद्धश्चाप्रतिवादो वादो यस्य स कुहेतु-तर्कोपरतप्रपञ्चसद्भावशुद्धाप्रतिवादवादः, तम्, वादश्च स्याद्वादसिद्धान्तो तत्र न कुहेतु-तर्कोपदर्शनम्, यश्च प्रपञ्चस्य—जगतः सद्भावावेदकत्वाच्छुद्धः, यद्विषयबाधको नापरो राद्धान्त इति ।

पुनः कीदृशम् ? **सच्छासनवर्धमानं** सत्—प्रमाणाबाध्यार्थप्रतिपादकत्वात् समीचीनम्, सतां—वा पदार्थानाम्, शास्यते—प्रतिपाद्यतेऽनेनेति शासनम्, समीचीनः—सत्पदार्थप्रदर्शको वाऽऽगमः, तेन वर्द्धमानः—तीर्थान्तरप्रणेत्रपेक्षया वृद्धिमुपगच्छन्तम् ।

इति वचनात् काव्योत्पत्तौ शक्ति-निपुणता-ऽभ्यासानां त्रयाणां समुदितानामेव हेतुत्वं, न त्वेकैकस्येति काव्यशक्तेरित्यनेन काव्यशक्ति-काव्यनिपुणता-काव्याभ्यासेभ्य इति गृह्यते, काव्यशक्त्यादिकं मयि वर्त्तते, अतस्तदुपयोगो यत्र कुत्रापि विषये मया प्रकटनीय इत्यभिसन्धिमता मया काव्यशक्त्यादिबलात् हे भगवन् ! त्वं न **नूयसे** स्तूयसे इत्यर्थः । **न परस्परेर्ष्यया नूयसे** मत्सदृशो मत्तो न्यूनो वा भगवन्तं स्तौति, कथमहं न स्तवीमि तत्सदृशस्ततो वाऽधिकप्रतिभादिगुणशालीत्येवमन्योऽन्येर्ष्यया मया न स्तूयसे, यथा काव्यशक्तितः स्तुतौ न यथास्थितस्तत्व्यगुणख्यापनं तथेर्ष्योद्भावितस्तुतावपीत्यर्थ. । **न वीरकीर्त्तिप्रतिबोधनेच्छया** तीर्थान्तरीयं प्रति वीरस्य-अपश्चिमतीर्थकृतो भगवतो या त्रिभुवनव्यापिनी कीर्त्तिस्तस्या यत् प्रतिबोधन-सम्यगवगमनं, तदिच्छया-तत्कामनया न स्तूयसे, **वीर !** इति सम्बोधनं वा, तत्र तवेति दृश्यम् , अथवा स्वस्य काव्यकरणकुशलताविषयकलोकव्यापिप्रख्यातिविषयकबोधेच्छयेत्यर्थः, एतत्स्तुतिमन्तरेणापि त्रिभुवनव्यापिन्या भगवतः कीर्त्तेरवगतिरस्त्येव जनानामिति तदिच्छया स्तुतिर्नानन्दनाय विदुषामित्याशयः । **न केवलं श्रद्धतयैव नूयसे** अनया स्तुत्या भगवद्गुणातिशयावगतिर्भवतु वा मा वा, केवलं-किन्तु भगवद्विषयिणी भक्तिः-श्रद्धा समस्ति, तद्वत्तया स्तूयसे, स्वश्रद्धाप्रकटनफलिकेयं भवत्स्तुतिरस्माकमित्यपि नेति यावत्, एतादृशी स्तुतिर्गुणातिशयविकलस्यापि श्रद्धान्धपुरुषकृताऽज्ञानविजृम्भितेति नोपादेया विदुषामित्याकूतम् । **यतः** यस्मात्, **गुणज्ञपूज्योऽसि** गुणज्ञानां सुरेन्द्रादीनामर्चनीयस्त्वमसि, गुणज्ञा गुणातिशयवत्तया भवन्तं ज्ञात्वैव भवन्तं पूजयन्ति, यदि भवान् गुणातिशयवान्न स्यान्न गुणज्ञा भवन्तं पूजयेयुरिति गुणातिशयवति त्वयि, **अयं** स्तुतिविषयकः, **आदरः** प्रयत्नो ममेत्यर्थः । "वदन्ति वंशस्थविलं ज-तौ ज-रौ" इति लक्षणलक्षितत्वाद् वंशस्थविलवृत्तमिदम्, एवमग्रेऽपि ॥ ४ ॥

भगवत्स्तुतिविषयकप्रयत्नलक्षणादरस्यावश्यविधेयत्वमुपदर्शयति—

परस्पराक्षेपविलुप्तचेतसः

स्ववादपूर्वापरमूढनिश्चयान् ।

वदन्तीति । गुणान्धचेतसः स्वविद्विषः किल समेत्य ते यानेव दोषान् वदन्ति त एव विज्ञानपथागताः सतां त्वदीयसूक्तप्रतिपत्तिहेतव इत्यन्वयः । तव वचनगुणेऽन्धं–सर्वथाऽऽवृतं चेतो–मनो येषां ते **गुणान्धचेतसः**, त्वद्वचनगुणज्ञानविकला इत्यर्थः । अत एव **स्वविद्विषः** स्वात्मानमेव विद्विषन्तः, जिनवचनमन्तरेण यथार्थात्मस्वरूपज्ञानासम्भवेनानात्मानमेवात्मानमवगच्छन्तस्ते आत्मानं नरके पातयन्तीति भवन्ति स्वविद्विषः । **किलेति** सम्भावनायाम् । **ते** तव मते, अथवा **ते** एकान्तवादिनः । **समेत्य** एकीभूय । यानेव **दोषान्** विरोध-संकर–व्यतिकर–संशया–ऽनवस्थादीन् । **वदन्ति** कथयन्ति । **त एव** दोषाः, **विज्ञानपथागताः** विचारमार्गोपनीताः सम्यग्विचारिताः सन्तः, **सतां** तत्त्वातत्त्वविवेककुशलानाम्, त्वदीयसूक्तस्य–त्वन्मुखाम्भोजनिर्गतस्याद्वादार्थानेकान्तस्य या प्रतिपत्तिः–ज्ञानं तस्य हेतवो भवन्ति अपेक्षाभेदेन विरोधादिदोषाणां परिहारोपपत्तेः, सर्वथाविरोधादेरभावात् कथञ्चिद्विरोधादेरिष्टत्वादित्यर्थः ॥ ६ ॥

कृतार्थता त्वय्येव परिनिष्ठितेति [कृपास्वरूपं त्वयैव परिज्ञातमिति] तवैवान्योपरि कृपा श्लाघनीया नान्येषामित्याह—

> **कृपां वहन्तः कृपणेषु जन्तुषु**
> **स्वमांसदानेष्वपि मुक्तचेतसः ।**
> **त्वदीयमप्राप्य कृतार्थकौशलं**
> **स्वतः कृपां संजनयन्त्यमेधसः ॥ ७ ॥**

कृपामिति । कृपणेषु जन्तुषु कृपां वहन्तः स्वमांसदानेष्वपि मुक्तचेतसोऽमेधसः, त्वदीयं कृतार्थकौशलमप्राप्य स्वतः कृपां संजनयन्तीत्यन्वयः । **अमेधसः** मेधारहिताः पुरुषाः सौगतादयः, **कृपणेषु** अतिदरिद्रेषु कृपापात्रेषु **जन्तुषु** प्राणिषु, **कृपां** तद्रक्षणविषयां दयाम्, **वहन्तो** धारयन्तः, **स्वमांसदानेष्वपि मुक्तचेतसः** स्वमांसदानेनाप्येतद्रक्षणं भवत्वित्येवंचित्तव्यापाराः, हे वीर ! **त्वदीयं** त्वत्सम्बन्धि, **कृतार्थकौशलं** कृतार्थं–निष्पन्नप्रयोजनं यत्

रथ्यापुरुषवदितस्ततो दृश्यमानः, **अन्यः** केवलज्ञानाद्यतिशयविकलत्वाद् भवद्भिन्नः, **जनः** भवभ्रमणजन्यक्लेशादिप्रयोजनकजनिमान्, **भवार्तिविक्लवः** भवसम्बन्धिपीडापरिप्लुतचेताः, हे वीर ! त्वद्वचनरूप यत् परमानन्दमुक्त्युपायज्ञानादिसाधनत्वादमृतं तदेवौषधं भवव्याध्यपहारप्रत्यलम्, **करुणात्मकैरपि** 'अहो-मासोपवासादिबहुक्लेशजनकैरुपायैः क्लेशपरिहाणिमुपदर्शयन् जिनोऽकरुणः, भोजनादीनि कर्माणि कुर्वन्नेवाहमिव क्लेशविमुक्तो भविष्यति जनः, किमिति मुधा क्लिश्यते ?' इत्येव करुणात्मकैरपि, **स्वनिष्ठितक्लेशविनाशकाहलैः** स्वस्मिन् स्वस्य वा निष्ठा–श्रद्धामित –प्राप्तो यः क्लेशविनाशस्तस्य काहलैः–युक्तिरिक्तवचनोद्गारैः, **विकुत्सयन्** निन्दयन्, न शान्तिम्, **आप्नोति** प्राप्नोति, अत्रैव वा भवार्तिविक्लव इति हेतुः, यत इत्थं त्वद्वचनामृतौषधं **विकुत्सयन्** असेवमानो भवार्तिविक्लवो भवतीति ॥८॥

अन्यतान्त्रिकप्रतारणया भवदुपदर्शितसन्मार्गप्रतिकूलं गच्छन् जनो मनुष्यजन्मकार्याकरणादुत्तरभवेऽपि पूर्वभवीयसंस्कारप्राबल्यतो जन्मकार्याकरणात् सुचिरजात एवेत्युपदिशति—

प्रपञ्चितक्षुल्लकतर्कशासनैः
परप्रणेयाल्पमतिर्भवासनैः ।
त्वदीयसन्मार्गविलोमचेष्टितः
कथं नु न स्यात् सुचिरं जनोऽजनः ? ॥९॥

प्रपञ्चितेति । परप्रणेयाल्पमतिर्जनो भवासनैः प्रपञ्चितक्षुल्लकतर्कशासनैस्त्वदीयसन्मार्गविलोमचेष्टितः सन् कथं नु सुचिरमजनो न स्यादित्यन्वयः । **परप्रणेयाल्पमतिः** परेण प्रणेया–नीयमाना, अल्पा–अल्पविषयिणी मतिर्यस्य स परप्रणेयाल्पमतिः, परावबोध्यमानमात्रविषयकबुद्धिरित्यर्थः । **जनः** पुरुषः । **भवासनैः** भवः–संसारः, आसनं–सुदृढावस्थानास्पदं येषां ते भवासनास्तैः । **प्रपञ्चितक्षुल्लकतर्कशासनैः**–प्रपञ्चितानि–स्वयंनिर्मितानि, यानि क्षुल्लकतर्कशासनानि–तर्कतयाऽऽपाततो भासमानतर्काभासप्रतिपादकशास्त्राणि, तैः–तद्द्वारेत्यर्थः । **त्व-**

सति घटोऽस्ति वह्निरस्तीत्येवमस्तित्वेन वस्तुनः स्फुरणम्, अभानापादिकाऽऽवरणशक्तिश्च, सा च प्रत्यक्षज्ञानतो नश्यति, तन्नाशे सति घटो भाति वह्निर्भातीत्येव स्पष्टतया वस्तु प्रतिभासते, प्रत्यक्षस्थले विषयदेशेऽन्तःकरण गत्वा विषयाकारेण परिणमति, स एव वृत्तिरुच्यतेऽन्त.करणपरिणाम., तादृशवृत्त्यवच्छिन्नचैतन्य प्रमाणचैतन्यमिति गीयते, अन्तःकरणावच्छिन्नचैतन्य च प्रमातृचैतन्यम्, विषयावच्छिन्नचैतन्यं प्रमेयचैतन्यम्, उपाधीनामन्त करणतद्वृत्तिविषयाणामेकदेशस्थत्वादुपधेयानामपि चैतन्यानामेकदेशस्थत्वम्, ततश्चाभेद इति चैतन्यत्रयाणामेकलोलीभावे प्रमेयचैतन्यस्य प्रमाणचैतन्याभेद एव प्रत्यक्षत्वम्, प्रमातृचैतन्य-प्रमेयचैतन्ययोरैक्यात् प्रमातृसत्तातिरिक्तसत्ताकत्वाभाव एव विषयस्य प्रत्यक्षत्वम्, विषयस्य स्वावच्छिन्नचैतन्ये कल्पितत्वादधिष्ठानसत्तैव कल्पितस्य सत्तेति विषयावच्छिन्नचैतन्यसत्तैव विषयस्य सत्ता, विषयावच्छिन्नचैतन्य च प्रमातृचैतन्याभिन्नमिति प्रमातृसत्तैव प्रमेयस्य सत्तेति प्रमातृसत्तातिरिक्तसत्ताकत्वाभावस्तत्र सुव्यवस्थितः परोक्षस्थले चान्त करणस्य न बहिर्निर्गमनमिति न तत्र विषयाकारान्त करणवृत्ति किन्तु स्वदेशे विषयाकारा वृत्तिरिति वृत्त्यवच्छिन्नचैतन्यस्य प्रमेयावच्छिन्नचैतन्याभेदाभावान्न ज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वम्, प्रमातृचैतन्यस्यापि विषयदेशस्थत्वाभावान्न प्रमेयावच्छिन्नचैतन्याभेद इति विषयस्यापि प्रमातृसत्तातिरिक्तसत्ताकत्वस्य भावेन न तदभावलक्षणप्रत्यक्षत्वमित्येतन्मतमुपहसति—

अविद्यया चेद् युगपद्विलक्षणं
क्षणादि कृत्स्नं न विलोक्यते जगत् ।
ध्रुवं भवद्वाक्यविलोमदुर्नयां-
श्चिरानुगांस्तानुपगूह्य शेरते ॥११॥

अविद्यया चेदिति । अत्रान्वयो यथाश्रुत एव । **अविद्यया** ब्रह्मनिष्ठया सत्त्व-रजस्तमोलक्षणया मायया, उत्पन्नमात्रं च, यदि, **चेद्** **युगपत्** समकालम्, **विलक्षणं** परस्परभिन्नम्, **क्षणादि** क्षणस्थितिकादि, **कृत्स्नं** समग्रम्, **जगत्** विश्वम्, **न विलोक्यते** युगपदित्यस्यात्राप्यन्वयात् समकालं न प्रत्यक्ष-

विनिश्चयः कृतः तथा ज्ञेयस्य विनिश्चयो यथार्थो न भवति, परे त्वेवमभिमन्यन्ते—यथाऽस्माभिर्ज्ञेयविनिश्चयः कृतस्तथैव ज्ञेयविनिश्चयो नान्यथेत्येवं सुनिश्चितज्ञेयविनिश्चयाः, अपीत्यत्राप्यनुषङ्गेण योजनीयः, हे वीर ! **ते** तव, **मतं** सप्तसन्नयसंयोजनाकलितस्याद्वादप्रमाणराजोपपादितमनेकान्ततत्त्वम्, **यातुं** ज्ञातुम्, 'ये गत्यर्थास्ते ज्ञानार्थाः' इति वचनात् ज्ञातुमिति वक्तव्ये यातुमिति यदुक्तं तद् दृष्टान्तदार्ष्टान्तियोः सादृश्याधिगतये, **नालं** न समर्थाः ॥१२॥

न केवलं भक्त्यैव किन्तु पराविज्ञातार्थागमप्रवक्तृत्वेन सर्वज्ञतया परीक्षिते त्वयि प्रसादोदयाकाङ्क्षिणः स्याद्वादिनः स्थिता इति भवतः प्रसादादचिरेणैवावाप्तरत्नत्रया आसादयिष्यन्ति मुक्तिलक्ष्मीमित्याह—

य एष षड्जीवनिकायविस्तरः
परैरनालीढपथस्त्वयोदितः ।
अनेन सर्वज्ञपरीक्षणक्षमा-
स्त्वयि प्रसादोदयसोत्सवाः स्थिताः ॥१३॥

य एष इति । त्वया परैरनालीढपथो य एष षड्जीवनिकायविस्तर उदितः, अनेन सर्वज्ञपरीक्षणक्षमाः प्रसादोदयसोत्सवास्त्वयि स्थिता इत्यन्वयः । हे वीर ! **त्वया** केवलज्ञानशालिना, **परैः** एकान्तवादिभिः, **अनालीढपथः** अपरामृष्टमार्गः, **य एष** परीक्षकजनैः प्रत्यक्षीक्रियमाणः, अध्ययना-ऽध्यापनाभ्यां प्रत्यक्षवद् व्यवह्रियमाण इति यावत्, **षड्जीवनिकायविस्तरः** उपयोगलक्षणो जीवः, स च संसारि-मुक्तभेदेन द्विविधः, तत्र—संसारी त्रस-स्थावरभेदेन द्विविधः । तत्र त्रसजीवः—तेजो-वायु-द्वीन्द्रियादिभेदेन त्रिविधः, त्रि-चतुरिन्द्रियादयो द्वीन्द्रियादित्वेन सङ्गृहीताः, स्थावरजीवोऽपि पृथिव्यम्बु वनस्पतिभेदेन त्रिविधः, यद्वा पृथिवीकाया-ऽप्काय-तेजस्काय-वायुकाय-वनस्पतिकाय-त्रसकायभेदेन षड्विधा जीवाः, अत्र त्रसपदेन द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियाणां ग्रहणम्, तेजो-वाय्वोर्गतिमात्रतया त्रसत्वेनाविवक्षणात् पृथगुपादानम्, इत्यादिदिशा षण्णां जीवनिकायानां विस्तरः—अवान्तर-तदवान्तरभेदप्रपञ्चः, **उदितः**

सर्वज्ञविनिश्चयं न करोति **असौ** त्वयि सर्वज्ञत्वनिर्णयकर्तृत्वविकलः पुरुषः, **न मानुषो** मनुष्यो न भवति, सर्वज्ञत्वसाधकहेतुज्ञानसद्भावेऽपि सर्वज्ञत्वज्ञानाभावात्, किन्तु शृङ्ग-पुच्छविकलः पशुरेवासाविति हृदयम् ॥ १४ ॥

तव तत्त्वप्रकाशनप्रभवत्रिभुवनव्यापियशःकथाऽस्तु नाम, तव प्रशिष्याणामपि स्वधियोद्गारप्रभाविता यादृशी यशःप्रथा, तादृशी यशःप्रथा परवादिप्रकाण्डैरेकत्र सम्मिलितैरपि प्रथयितुमयोग्यैवेत्युपदिशति—

अलब्धनिष्ठाः प्रसमिद्धचेतस-
स्तव प्रशिष्याः प्रथयन्ति यद् यशः ।
न तावदप्येकसमूहसंहताः
प्रकाशयेयुः परवादिपार्थिवाः ॥ १५ ॥

अलब्धनिष्ठा इति । अलब्धनिष्ठाः प्रसमिद्धचेतसस्तव प्रशिष्याः यद् यशः प्रथयन्ति, एकसमूहसंहताः परवादिपार्थिवास्तावदपि न प्रकाशयेयुरित्यन्वयः । हे वीर ! **तव** भवतः, **प्रशिष्याः** शिष्यस्य शिष्याः, पारम्पर्येण शिष्या इति यावत्, कतिसंख्यकाः ? **अलब्धनिष्ठाः** न लब्धा—अलब्धा, निष्ठा—विश्रान्तिः, अलब्धा निष्ठा यैस्ते अलब्धनिष्ठाः, प्रभूतसङ्ख्यका इत्यर्थः, किम्भूताः ? **प्रसमिद्धचेतसः** प्रकर्षेण समिद्ध—समित्यादिगुणसम्पन्नं चेतोऽन्तःकरणं येषां ते प्रसमिद्धचेतसः, एवंविधास्तव प्रशिष्याः, **यद् यशः प्रथयन्ति** यादृशं जगद्विख्यातं यशः-जैनमतगौरवविषयकगुणगानसमुल्लसितं यशः, प्रथयन्ति—विस्तारयन्ति भव्यजनहृदयव्यापि कुर्वन्ति, **एकसमूहसंहताः** सर्वैरैकमत्यमत्याश्रित्यैकं समूहं स्वीयमनेकान्तवादिविनिर्मुक्तमारचय्य तत्र संहताः—सम्मिलिताः, **परवादिपार्थिवाः** एकान्तवादिना राजानः—एकान्तवादिनामग्रेसराः, **तावदपि** भवत्प्रशिष्ययशस्समानमपि यशः, **न प्रकाशयेयुः** न लोकज्ञानविषयं कुर्युः, दूरे भवद्यशस्समानयशःप्रकाशनसंभावना परवादिष्विति हृदयम् ॥ १५ ॥

त्वयि संसारविकारोत्पादनपराङ्मुखा दुर्जना यदा भवन्ति तदा दुर्जनजनितोपद्रवभयरहितैस्तव प्रशिष्यैः लोकेऽस्मिन् सज्जनमनोज्ञं न किञ्चिन्न च तदुत्सवो न्याय्य इत्येवं सौकर्येण लोकः प्रबोधितो भवतीत्याह—

मात्सर्यदोषाभिभूताः परवादिशिष्या यदि भवदीयसूत्रार्थयथार्थवक्तारो न भवन्ति तदाऽत्र विस्मयो न कार्य इत्याह—

स्वपक्ष एव प्रतिबद्धमत्सरा
यथान्यशिष्याः स्वरुचिप्रलापिनः ।
निरुक्तसूत्रस्य यथार्थवादिनो
न तत् तथा यत् तव कोऽत्र विस्मयः ॥१७॥

स्वपक्ष एवेति । यथाऽन्यशिष्याः प्रतिबद्धमत्सरा निरुक्तसूत्रस्य स्वपक्ष एव स्वरुचिप्रलापिनः, तत तथा यथार्थवादिनो न यत, अत्र तव को विस्मय इत्यन्वयः । **अन्यशिष्याः** अन्यवादिनः शिष्याः, प्रतिबद्धो मत्सरोऽन्यपक्षे द्वेषो यैस्ते **प्रतिबद्धमत्सराः** सन्तः, **निरुक्तसूत्रस्य** त्वदीयनिरुक्तसूत्रस्य, **स्वपक्ष एव** स्वाभ्युपगतपदार्थतत्त्व एव, **स्वरुचिप्रलापिनः** योऽर्थः स्वस्मै रोचते तदर्थस्य येन केनचित् प्रकारेण भाषिणो यथा, **तत्** तदा, **तथा** तेन रूपेण, **यथार्थवादिनो न** तेन रूपेण तथार्थस्याभावात् . अत्र अज्ञानविजृम्भितेऽस्मिन् विषये, **तव** राग-द्वेषादिरहितस्यास्य भवतः, **को विस्मयः**? न किञ्चिदप्याश्चर्यमित्यर्थः ॥ १७ ॥

जिनस्य वचनद्वारा सर्वरक्षकत्वगुण स्तौति—

नयप्रसङ्गापरिमेयविस्तरै-
रनेकभङ्गाभिगमार्थपेशलैः ।
अकृत्रिमस्वादुपदैर्जनं जनं
जिनेन्द्र ! साक्षादिव पासि भाषितैः ॥ १८ ॥

नयेति । अन्वयोऽत्र यथाश्रुतपदसमभिव्याहारानुसार्येव । हे जिनेन्द्र ! **साक्षादिव** साक्षाद् यथा स्यात तथा, **जनं जनं** प्रतिजनम् , **भाषितैः** वचनैः, **पासि** रक्षसि, कथम्भूतैर्भाषितैरित्याकाङ्क्षायामाह—**नयप्रसङ्गापरिमेयविस्तरैः** नयाना—सङ्ग्रहादीनाम् , प्रसङ्गेन—प्रकृष्टसङ्गतया, अपरिमेयः—परितः

एकरूपापि हि भगवतोऽर्धमागधी भाषा वारिदविमुक्तवारिवदाश्रयानुरूपतया परिणमति, यदाह--

देवा देवी नरा नारीं शवराश्चापि शावरीम् ।
तिर्यञ्चोऽपि हि तैरश्चीं मेनिरे भगवद्गिरम् ॥ १४ ॥" [ ]

त्वदीयमाहात्म्यविशेषसंभली त्वदीयं यन्माहात्म्यं तत्विशेषसंभली-तद्विशेषान्तर्भूता, तव येऽतिशयास्तेषु मध्ये भारतीस्वरूपोऽप्यतिशय इति यावत्, मोहेन-अज्ञानेन, पिच्छलानि-कस्यापि विचारपदस्यादृढावस्थानानि **मोहपिच्छलानि**, अपि मनांसि, **अभ्युपेत्य** अभित-सर्वतो भावेनोपगम्य, **ते** तव, **भारती** वाणी, **भाति** प्रकाशते इत्यर्थः ॥१९॥

परस्परविद्विषा प्रवादिनामन्योऽन्यपीडाजनकैरेकान्तवाग्विषकण्टकैरनेकान्तकल्याणकन्दोक्तिर्भवान् न पीडितो भवतीति स्तुतिपात्रमित्याह--

असत् सदेवेति परस्परद्विषः
प्रवादिनः कारणकार्यतर्किणः ।
तुदन्ति यान् वाग्विषकण्टकान्न तै-
र्भवाननेकान्तशिवोक्तिरर्यत ॥२०॥

असत् सदेवेतीति । परस्परद्विषः, असत् सदेवेति कारणकार्यतर्किणः प्रवादिनो यान् वाग्विषकण्टकान् तुदन्ति तैरनेकान्तशिवोक्तिर्भवान् न अर्दित इत्यन्वयः । **अर्यत** इति मूलपाठस्तु चिन्तनीयार्थः, **परस्परद्विषः** अन्योऽन्यद्वेषशालिनः, **असत् सदेवेति कारणकार्यतर्किणः** कारणे उत्पत्तेः प्रागसदेव कार्यमिति तर्किणो नैयायिकादयः, कारणे उत्पत्तेः प्राक् सदेव कार्यमिति तर्किणः साङ्ख्याः, **प्रवादिनः** नैयायिकसाङ्ख्यादयः, **यान् वाग्विषकण्टकान् तुदन्ति** साङ्ख्याः कारणेऽसदेव कार्यमिति वाग्विषकण्टकान् तुदन्ति-खण्डयन्ति, नैयायिकाः कारणे सदेव कार्यमिति वाग्विषकण्टकान् तुदन्ति-खण्डयन्ति, ते तु वाग्विषकण्टका यथावत् खण्डिता न भवन्त्येवेति नैयायिकोक्तिविषकण्टकाः साङ्ख्यमतार्दनप्रवणा पीडयन्त्येव साङ्ख्यान्, एवं साङ्ख्योक्तिविष-

अन्योपदेशप्रकारविलक्षणप्रकारोपदेशदातृत्वेन भगवन्तं स्तौति—

मुखं जगद्धर्मविविक्ततां परे
वदन्ति तेष्वेव च यान्ति गौरवम् ।
त्वया तु येनैव मुखेन भाषितं
तथैव ते वीर ! गतं सुतैरपि ॥२२॥

मुखमिति । परे मुखं जगद्धर्मविविक्ततां वदन्ति तेष्वेव च गौरवं यान्ति, हे वीर ! त्वया तु येनैव मुखेन भाषितं तथैव ते सुतैरपि गतमित्यन्वयः । **परे** एकान्तवादिनः, **मुखं** एकान्तनित्यत्वैकान्तक्षणिकत्वादिप्रकारम्, **जगत्** तत्तदेकान्तधर्मविशिष्टं विश्वम्, **धर्मविविक्ततां** धर्माणामन्योऽन्यभिन्नतां विरुद्धतां च **वदन्ति** कथयन्ति, **च** पुनः, **तेष्वेव** मुखजगद्धर्मविविक्ततास्वरूपेष्वेव, एवकारेण स्वस्मिन् गौरवस्य व्यवच्छेदः, **गौरवं** गुरुत्वम्, **यान्ति** प्राप्नुवन्ति, हे **वीर! त्वया तु** त्वया पुनः, **येनैव मुखेन** येनैवानन्तधर्मात्मकत्वलक्षणप्रकारेण, **भाषितम्** उपदर्शितम्, **तथैव** तेनैव प्रकारेण, **सुतैरपि** भवच्छिष्यप्रशिष्यैरपि, **गतं** गमनं कृतम्, न तु भवदुक्तमार्गविलोमगमनं भवच्छिष्यप्रशिष्याणामित्यर्थः ॥ २२ ॥

ये त्वद्वचनार्थं यथावदनवबुद्ध्यैव तपोनुष्ठानादिकमाचरन्ति ते मुक्तिं नैवाप्नुवन्तीत्यतो मुक्तिमभिलषद्भिस्त्वदीयवाक्यार्थसम्यगवबोधः करणीय एवेत्युपदिशति—

तपोभिरेकान्तशरीरपीडनै-
र्व्रतानुबन्धैः श्रुतसंपदापि वा ।
त्वदीयवाक्यप्रतिबोधपेलवै-
रवाप्यते नैव शिवं चिरादपि ॥ २३ ॥

तपोभिरिति । अत्रान्वयो यथाश्रुतशब्दानुगतिक एव । **एकान्तशरीरपीडनैः** एकान्तेन—सर्वथा, शरीरपीडनैः—शरीरपीडामात्रफलकैः, **तपोभिः** मासोपवासादिभिः, तथा **व्रतानुबन्धैः** अहिंसादिपञ्चमहाव्रतपरिपालनैः, **वा** अथवा, **श्रुतसंपदाऽपि** द्वादशाङ्ग्यध्ययनादिसमृद्ध्यापि, **त्वदीयवाक्यप्रति-**

स चेन्निमित्तं स्फुटमेव नास्ति न
त्वदन्यतः स त्वयि येन केवलः ॥२५॥

विरागहेतुप्रभवमिति । 'सुख विरागहेतुप्रभवं न चेत् [तदा] तद् न नाम किञ्चित्, इति वयं स्थिताः, चेत् स निमित्तं, स्फुटमेव नास्ति [त्वदन्यत्र] येन [यतः] केवलः स न त्वदन्यतः, [किन्तु] त्वयि' इत्यन्वयः । सुखं **विरागहेतुप्रभवं** रागाभावलक्षणहेतुजन्यम्, **न चेत्** यदि न तदा, **तत्** सुखत्वेनाभिमतम्, **नामे**ति कोमलामन्त्रणे, **न किञ्चित्** न किमपि, सुख-स्वरूपं न भवत्येवेत्यर्थः । **इति** एवम्, **वयं** हे वीर ! तव भक्ता जैनाः, **स्थिताः** व्यवस्थिताः, जैना एवं निर्णीतवन्तः, यदुत—विरागहेतुप्रभवमेव सुख-मिति, **चेत्** यदि, **स** विरागः, **निमित्तं** सुखकारण तदा, **स्फुटमेव** प्रकटमेव, **नास्ति** त्वदन्यत्र सुखं नास्ति, **येन** यतः **केवलः** शुद्धः, **स** विराग, **त्वदन्यतः** त्वद्भिन्नबुद्ध-कपिलादिषु, **न** नास्त्येव, किन्तु **त्वयि** जिन एवेत्यर्थः ॥२५॥

कर्म-कर्तृ-फलादिसम्बन्धप्ररूपणाऽपि यथा भवता क्रियते न तथाऽन्येन सा कर्तुं शक्येत्याह—

न कर्म कर्तारमतीत्य वर्तते
य एव कर्ता स फलान्युपाश्नुते ।
तदष्टधा पुद्गलमूर्ति कर्मजं
यथाऽऽत्थ नैवं भुवि कश्चनापरः ॥२६॥

न कर्मेति । कर्तारमतीत्य कर्म न वर्त्तते, य एव कर्त्ता स फलान्युपाश्नुते, पुद्गलमूर्त्तिकर्मजं तदष्टधा यथाऽऽत्थ, भुवि कश्चनापरो नेत्यन्वय । **कर्त्ता-रमतीत्य** कर्तारमतिक्रम्य, **कर्म न वर्तते** कर्म न संभवति, **य एव कर्ता** य एव यत् कर्म करोति, **स** कर्ता, **फलानि** स्वकृतकर्मफलानि, **उपाश्नुते** उपभुङ्क्ते, **पुद्गलमूर्त्ति कर्मजं** पौद्गलिकं मनो-वचन-कायव्यापारजन्यं च, **तत्** फलजनक कर्म, **अष्टधा** ज्ञानावरणीय—दर्शनावरणीय—मोहनीया—ऽन्तरायादि-

त्वमात्थ सत्त्वं परिणामलक्षणं
तदैव ते वीर ! विबुद्धलक्षणम् ॥२८॥

यदेति। हे वीर ! यदा सत्त्वं न कोपादिवियुक्तलक्षणं न चापि कोपादिसमस्तलक्षणं त्वमात्थ, किन्तु परिणामलक्षणमात्थ, तदैव ते विबुद्धलक्षणमित्यन्वयः। हे वीर ! **यदे**त्यस्य **आत्थे**त्यनेन सम्बन्धः, "औपशमिक–क्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वम्, औदयिक-पारिणामिकौ च" [२–१] इति तत्त्वार्थसूत्रात् औपशमिकादिभावयुक्तो जीव इति, तत्र **सत्त्वमात्मानम्**, **कोपादिवियुक्तलक्षणं** कोपादिभिर्वियुक्तो जीव इत्येवलक्षणकम्, त्वं **न आत्थ** न कथयसि, कोपादिवियोगस्य निश्चैतन्ये जडेऽपि भावात् कामक्रोधादिदशाया चाभावात्, **च** पुनः, **नापि** नेव, **कोपादिसमस्तलक्षणं** कोपाद्यखिलभावयुक्तो जीव इत्येवं लक्षणकमपि सत्त्व त्व न कथयसि, कोपादिसकलभावयुक्तत्वस्य क्वपि जीवे कदाप्यभावेनासम्भवदोषाक्रान्तत्वात्, किन्तु परिणामलक्षणं जीवत्व-भव्यत्वाऽभव्यत्वान्यतरा-ऽस्तित्वा-ऽन्यत्व कर्तृत्व-भोक्तृत्वगुणवत्त्वा-ऽसर्वगतत्वा–ऽनादिकर्मसन्तानबद्धत्व-प्रदेशवत्त्वा–ऽरूपत्व--नित्यत्वाद्यनादिपरिणामलक्षणं 'निरुक्तानादिपरिणामयुक्तो जीव' इत्येवलक्षणकं सत्त्व यदा त्वं कथयसि **तदैव** तदानीमेव, **ते** जिनस्य, **विबुद्धलक्षणं** विशेषेण बुद्ध'--समस्तपदार्थज्ञाता जिन इति लक्षणमावेदित भवतीत्यर्थ., विबुद्धत्वमन्तरेणेदृशसत्त्वलक्षणोक्तेरसम्भवादित्याशयः ॥ २८ ॥

ज्ञान-क्रिययोरन्योऽन्यसहकृतयोरेव फलवत्त्वं न त्वन्योऽन्यवियुक्तयोस्तत्त्वमिति ब्रुवता भवता मुक्तिमार्गः स्पष्टीकृत एवेत्यावेदयति—

क्रियां च संज्ञानवियोगनिष्फलां
क्रियाविहीनां च विबोधसंपदम् ।
निरस्यता क्लेशसमूहशान्तये
त्वया शिवायालिखितेव पद्धतिः ॥ २९ ॥

समृद्धयः; **स्फुरन्ति** प्रकाशन्ते, हे जिन !, **ताः**, सूक्तसम्पदः, **तवैव** जिनस्य भवत एव, **पूर्वमहार्णवोत्थिता वाक्यविप्रुषः** पूर्वग्रन्थात्मको यो महार्णवः; तरङ्गा इव तत उत्थिता वाक्यविप्रुषः–वाक्यबिन्दवः, **जगत्प्रमाणं** जगतः–विश्वजन्तोः, प्रमाण–न कस्यचिदप्रमाणमित्यर्थः ॥ ३० ॥

ईदृशी दर्शन-ज्ञान-चारित्रात्मकयोगेन सुदुस्तरतपश्चरणादिना वा विशिष्टातिशयाप्तिर्जिनस्य भवतो मनुष्यजन्मन्येव नान्यत्रेति शक्राद्याः सुरर्षभाः स्वस्य महत्त्वाभिमानं त्यजन्तीत्युपदर्शयति—

शताध्वराद्या लवसप्तमोत्तमाः
सुरर्षभा दृष्टपरापरस्त्वया ।
त्वदीययोगागममुग्धशक्तय-
स्त्यजन्ति मानं सुरलोकजन्मजम् ॥ ३१ ॥

शताध्वराद्या इति । शताध्वराद्या लवसप्तमोत्तमाः सुरर्षभास्त्वया दृष्टपरापरास्त्वदीययोगागममुग्धशक्तयः सुरलोकजन्मजं मानं त्यजन्तीत्यन्वयः । **शताध्वराद्याः** इन्द्राद्याः, **लवसप्तमोत्तमाः** लवसप्तमाः–अनुत्तराभिधानेषु पञ्चसु विमानेषु निवसन्तो देवाः, ते उत्तमाः–सर्वश्रेष्ठा येषु तादृशाः, सुरर्षभाः देवानामधिपतयः, **त्वया** जिनेन, **दृष्टपरा-ऽपराः** 'अयमेतस्मात् परोऽयं चास्मादपरः' इत्येवं दृष्ट. परा-ऽपरभावो येषां ते दृष्टपरापराः, परा-ऽपरशब्दावत्र भावप्रधानत्वात् परत्वा-ऽपरत्वे प्रतिपादयतः, एवम्भूतास्ते सुरर्षभाः **त्वदीययोगागममुग्धशक्तयः** त्वदीयः–तव सम्बन्धी यो योगः–दर्शन-ज्ञान-चारित्रात्मकः, तस्य आगमे–प्राप्तौ, यद्वा त्वदीयौ–भवतो महावीरस्य सम्बन्धिनौ यौ योगा-ऽऽगमौ–मोक्षकारणदर्शन ज्ञान-चारित्रात्मको योगः, द्वादशाङ्गीरूपं जिनप्रवचनमागमः, तयोः, तत्प्राप्तावित्यर्थः । मुग्धा–कुण्ठिता शक्तिर्येषां तादृशाः सन्तः, **सुरलोकजन्मजं** सुरलोके–देवलोके, यद् जन्म–स्वोत्पत्तिः, ततः संजातम् , **मानं** अभिमानं, **त्यजन्ति** मुञ्चन्ति ॥ ३१ ॥

क्व स्तुतिः श्रीजिनेन्द्रस्य सिद्धसेनविनिर्मिता ।
क्व तदर्थैकदेशार्था व्याख्या लावण्यनिर्मिता ॥ १ ॥

तथापि मननादस्या वर्धमानो जिनः स्वयम् ।
हृदयस्थोऽचिरं भूयाद् भक्तस्यामितकामदः ॥ २ ॥

एतद्व्याख्याविभातार्था आद्या द्वात्रिंशिका स्तुतिः ।
दिवाकरकृता नित्यं पठ्यमानाऽस्तु भूतये ॥ ३ ॥

इति श्रीतपोगच्छाधिपति-शासनसम्राट्-सर्वतन्त्रस्वतन्त्रश्रीविजयनेमिसूरीश्वर-पट्टालङ्कारेण व्याकरणवाचस्पति-शास्त्रविशारद-कविरत्नेतिपदालङ्कृतेन श्रीविजयलावण्यसूरिणा विरचिता किरणावलीनाम्नी प्रथमद्वात्रिंशिकाव्याख्या समाप्ता ॥



ऽग्नि-राजादिना यदाऽपहृतं भवति भोगदानादिना वा क्षीयत इति तदपहारे क्षये वा सति तत्स्वामित्वप्रयुक्त महेश्वरत्वमपि नावतिष्ठते, भगवाँस्तु तस्कराद्यन-पनेय-भगदानाद्यविनाशिविद्याधनेन महेश्वरः सर्वदाऽवतिष्ठत एवेति; अथवा अन्तःकरणावच्छिन्नं चैतन्य जीवोऽविद्यावच्छिन्न चैतन्यमीश्वर इति वेदान्तनये महेश्वरोऽविद्यालक्षणोपाधिसत्तासमकालीनसत्ताकत्वादविद्याविलये विगच्छतीत्यविद्या-महेश्वरो भवति, जैनमते तु जिनो विद्यामहेश्वरो न कदाचिद् विलय गच्छति, विद्यायाः केवलोपयोगलक्षणाया निधनाभावात्; अथवा द्वैततत्त्वावगाहिन्यो-ऽद्वैततत्त्वावगाहिन्यो वा याः काश्चिद् विद्याः सन्ति ता निखिला अपि जिनोक्त-पूर्वमहार्णवसमुद्गता एवेति सर्वविद्यामूलागमप्रवक्तृत्वाज्जिनो विद्यामहेश्वरस्तमि-त्यर्थः । **अयाचितलोकपालं** न याचितोऽयाचितः, लोक पालयतीति लोक-पालः, अयाचितश्चासौ लोकपालश्चायाचितलोकपालस्तम्, इन्द्रादयो दश दिक्पालाश्च याचिताः सन्तो लोकपालाः, जिनस्तु भगवान् 'दुःखमयससार-सागरे पततोऽस्मान् रक्ष' इत्येवं लोकैरयाचितोऽपि ससारमूलाज्ञाननिवर्त्तककेवल-ज्ञानादिप्रभवापवर्गलक्षणपरमपुरुषार्थोपदेशदानेन लोकान् पालयतीति । **ब्रह्माक्षरं** ब्रह्म च तदक्षरं च ब्रह्माक्षरं तद्रूपम्, शुद्धचैतन्यं ब्रह्म परैरुपगीयते, तच्च कर्मावरणविगमे जिनो भवत्येव, न क्षरति—न विनश्यतीत्यक्षरः, स चैकान्तः कोऽपि न भवति, वस्तुमात्रस्योत्पाद-व्यय-ध्रौव्यलक्षणसत्त्वस्य प्रतिक्षणं भावात्, किन्तु कथञ्चिद्विनाशेऽपि द्रव्यार्थतो ध्रौव्यशालित्वेनोपयोगात्मना न विनश्यत्येव, जीवद्रव्यात्मकव्यक्तिस्वरूपेण च न विनश्यति, एतादृश चाक्षरत्वं संसारिणो-ऽपीति न विशेषप्रतिपक्तिकरम्, इदं तु स्याद् वर्त्तमानजिनपर्यायविजातीयपर्या-योत्पत्तिलक्षणविनाशरहितत्वमक्षरत्वम्, ईदृश चाक्षरत्वं न मनुष्यादेः, तस्य मनुष्यादिपर्यायविजातीयदेवादिपर्यायोत्पत्तिलक्षणविनाशशालित्वादिति । **परं** सर्वो-त्कृष्टः परस्तम्, **अयोगिनं** कायवाङ्मनोयोगरहितम्, चित्तवृत्तिनिरोधलक्षणयोगोऽपि सम्प्रज्ञाताऽसम्प्रज्ञातभेदशाली मुक्तिधाम गतस्य जिनस्य नास्तीत्ययोगिनम्; अथवा **परमयोगिनम्** आत्मतत्त्वसाक्षात्कारवन्तम्—

"आगमेनानुमानेन ध्यानाभ्यासरसेन च ।
त्रिधा प्रकल्पयन् प्रज्ञां लभते योगमुत्तमम् ॥१॥" [ ]

स्नेहपात्रं येषां ते तथा तेषु प्रार्थितार्थसखिषु, प्रार्थितमेवार्थं मित्रवदतिस्निग्धतया मन्यमानेषु; **उपनतप्रसादः** उपनतः–प्राप्तः, प्रसादः–अयमिष्टप्राप्त्या वर्धतामितीच्छाविशेषो यस्य स उपनतप्रसादः **न** न भवसि, यतः पूर्वजन्मार्जितदुष्कृतकर्मोदयात् तदुपभोगनिष्पत्तये दुःखार्दिता जना भवन्ति—

"नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥४॥"

इत्यादिवचनेन फलोपभोगमन्तरेण कर्मक्षयासम्भवप्रतीत्या तदुपभोग आवश्यक इति तत्र दया तत्प्रतिबन्धजननी न योग्येति घृणामुखो न भगवान्, ये खलु येन केनचित् प्रकारेण प्रार्थितमेवार्थं कामयन्ते तेषां प्रार्थितार्थप्राप्तिजन्योपभोगविशेषः स्वकृततदनुकूलपूर्वकर्मोदयत एव भविष्यति, तादृशकर्मोदयाभावे कस्य सहकारित्वमासादयिष्यति प्रसादः, न तु स्वकृतसुकृतमन्तरेण प्रार्थितार्थप्राप्तिरिति न तेषु भगवान् उपनतप्रसाद इति । **हितानुरक्तान्** अनन्तकामिन्यादिविषयपरिपूरिते जगति यत् परमार्थतो हितं तदनुरक्तान्–तदेव कामयमानान् भगवद्भक्तान्, श्राद्धान्, **श्रेयसा** परमकल्याणेन मोक्षसुखेन, **न युनक्षि** न संयोजयसि, इति न, किन्तु श्रेयसा युनक्ष्येव, आप्तजिनोपदिष्टमार्गमेवानुसरन्तो हितानुरक्ता हितं मोक्षानन्दमासादयन्त्येव, **अयम्** अनन्तरमेवोपदर्शितः, **प्रवृत्त्यतिशयः** दुःखार्दितेषु न घृणा, प्रार्थितार्थसखिषु प्रसादाभावः, हितानुरक्तेषु श्रेयस्संयोजनमित्येवं, प्रवृत्त्यतिशयः, **त्वदनिर्गतः** मुक्तिधाम गतादपि त्वत्तो न निर्गतः–न पलायितः, किन्तु त्वय्यवतिष्ठत एवेति ॥ २ ॥

शरणागतवत्सल ! भयार्द्दितेऽपि तव चरणशरणमुपगतो जन्तुरुपशान्तमना रिपोरमोघमपि शस्त्रं कुण्ठितं करोतितरामित्युपदर्शयति–

कृत्वा नवं सुरवधूभयरोमहर्षं
दैत्याधिपः शतमुखभ्रुकुटीवितानः ।
त्वत्पादशान्तिगृहसंश्रयलब्धचेता
लज्जातनुद्युति हरेः कुलिशं चकार ॥३॥

पिबन्ति' इत्यन्वयः। **पीतामृतेष्वपि** पीतममृतं सुधा यैस्ते पीतामृतास्तेष्वपि, **महेन्द्रपुरस्सरेषु** महेन्द्रः पुरस्सरोऽग्रेसरो येषा ते महेन्द्रपुरस्सरास्तेषु, **सुरेषु** देवेषु, **स्वतन्त्रसुखदुर्ललितः** स्वतन्त्रे–स्वाधीन, यत् सुखम्–आनन्दः, तेन दुर्ललितः–अमनोहरचेष्टितः. **मृत्युः** यमः, अमृतपानं कुर्वन्तु नाम सुराः, किन्तु मृत्युस्तान् न मुञ्चति—

"अहरहर्नयमानो गामश्वं पुरुषं पशुम् ।
वैवस्वतो न तृप्यति सुराया इव दुर्मतिः ॥५॥"

इत्यादिवचनेन मृत्योर्दुर्ललितत्व प्रसिद्धमेव । हे वीर! **तव पुनर्वाक्यामृतं** भवन्मुखनिर्गतमनेकान्तवादामृतम् , **विधिना** शास्त्रोक्तोत्सर्गापवादप्रकारेण, **उपयुज्य** तदर्थानुष्ठानलक्षणोपभोगविषयं कृत्वा, **अवशस्य** अन्यानधीनस्य स्वतन्त्रस्य, **मृत्योः** यमस्य, **शूराभिमानं** 'अहं सर्वतो बलवान् वीरः' इत्यभिमानम् , **पिबन्ति**, मृत्योः शूराभिमानं विनाशयन्ति, मृत्युभयं तेषां न भवतीति यावदित्यर्थः ॥ ४ ॥

हे जिन! भवद्दर्शनविनष्टजननन्दुःखमूलकर्मपादपाना पुनर्जन्माभावात् तत्प्रभवं दुःखं न भवतीत्यहो भवद्दर्शनमाहात्म्यमिति स्तौति—

अप्येव नाम दहनक्षतमूलजाला
लक्ष्मीकटाक्षसुभगास्तरवः पुनः स्युः ।
न त्वेव नाथ! जननक्लममूलपादा-
स्त्वद्दर्शनानलहताः पुनरुद्भवन्ति ॥५॥

अप्येवेति— दहनक्षतमूलजाला लक्ष्मीकटाक्षसुभगास्तरवः पुनरपि स्युरेव नाम. हे नाथ! त्वद्दर्शनानलहता जननक्लममूलपादाः पुनरुद्भवन्त्येव न तु' इत्यन्वय. । **दहनक्षतमूलजालाः** दहनेन–अग्निना, क्षतानि–विनष्टानि, मूलजालानि येषा ते दहनक्षतमूलजालाः, **लक्ष्मीकटाक्षसुभगाः** लक्ष्म्याः–पत्र–पुष्प-फलसमृद्धिलक्षणलक्ष्म्या यः, कटाक्ष –कटाक्षेणेक्षणं, तेन सुभगाः–मनोहराः,

"यावज्जीवेत् सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृत पिबेत् ।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ? ॥ ७ ॥" [ ]

इत्यादिवचनानि, तथा, कः पुनः परलोकादागतः ? मूढप्रवादोऽयम्, एतावदेवेन्द्रियगोचरान्तर्वर्त्ति वस्तु नोर्ध्वमित्यादिवचनानि च, **विश्वासयन्ति** परलोक-नरकादि-तदुपभोग्यदुःखाद्यभावे विश्वासमुत्पादयन्ति, किन्तु **हि** यतः, भवान् **यथैव** येनैव प्रकारेण, **दुःखं** अभक्ष्यभक्षणादिनिषिद्धकर्माचरणजन्यनारकादिजन्मप्रभवदुःखमसातावेदनीयम्, **अवदत्** उक्तवान्, **तत्** दुःखं, **तथा** तेनैव प्रकारेण भवति, **तत्सम्भवे च** तथाविधदुःखसम्भवे पुनः, **मतिमान्** ज्ञानवान् पुरुषः, **किमिवे**त्यसम्भावनायाा, न कथमपि, **अभयः स्यात्** नरकयातनाभयरहितो भवेदित्यर्थः ॥६॥

भगवतो निन्दाव्याजेन स्तुतिमुपदर्शयति—

स्थाने जनस्य परवादिषु नाथबुद्धि-
र्द्वेषश्च यस्त्वयि गुणप्रणतो हि लोकः ।
ते पालयन्ति समुपाश्रितजीवितानि
त्वामाश्रितस्य हि कुतश्चिरमेष भावः ? ॥७॥

स्थान इति—'परवादिषु जनस्य नाथबुद्धि, यश्च त्वयि द्वेषः [एतदुभय] स्थाने, हि गुणप्रणतो लोकः, समुपाश्रितजीवितानि ते पालयन्ति, त्वामाश्रितस्य हि एष भावश्चिरं कुत. ?' इत्यन्वय । **परवादिषु** एकान्तनित्याऽनित्यादिपदार्थप्ररूपककपिल-गौतमादिषु, **जनस्य** लोकस्य, **नाथबुद्धिः** यथार्थतत्त्वोपदेशेन मा सम्यग् मार्गे प्रवर्तयतीत्यय मम नाथ इति बुद्धिः, **यश्च** यः पुनः, **त्वयि** जिने, **द्वेषः** ममानिष्टमयमुपदिशतीति क्रोधः, तदेतदुभयं **स्थाने** योग्यस्थले, **हि** यत, **लोकः** जन, **गुणप्रणतः** गुणे नम्रीभूत, यत्र गुणं पश्यति तमेव नमस्करोति आश्रयति च, परवादिषु गुणाः ततस्तेषु सन्ति नाथबुद्धिः, त्वयि तु दोष एव विद्यत इति द्वेषस्त्वयि युक्ता इत्युपदर्शयति—**ते** इति—परवादिन इत्यर्थः, **समुपाश्रितजीवितानि** सम्यक् स्वचरणोपासकाः समुपाश्रिताः

निर्मूलाना प्रलापानाम्, निर्वचनस्य—निरुक्तेः सम्यक्कथा प्रतिपादनस्येति यावत्, योऽभावः स युक्त एव, असति साध्वनुशास्तरि यथाकथञ्चित् परस्परविरुद्धा अपि प्रलापा निर्वक्तु शक्यन्ते, सति तु तस्मिस्तदग्रतस्तथाप्रलापात्मकस्य स्वपक्षस्य निर्वचनाभावो युक्त एव । **च** किञ्च, **नामे**ति कोमलामन्त्रणे, यद्वा **नाथे**ति पाठे हे त्रिभुवनस्वामिन् ! **भवता** जिनेन, **बहुना** भावप्रधाननिर्देशाद् बाहुल्येन, **एकमार्गम्** एकः—मुख्यः, मार्गः—प्रतिपादनपद्धतिर्यस्य तादृशम्, **उक्तं** प्रतिपादनम्, "वचंक् परिभाषणे" इत्यतो भावे क्लीबे क्तः, 'वा क्लीबे" [२. २. ९२.] इति षष्ठीविकल्पनात् कर्तरि तृतीया च, तथा च भवतो जिनस्य प्रतिपादनमित्यर्थः, **च** पुनः, **निर्विग्रहं** निर्विवादं विगतविरोधं तत्, **स्यात्** भवेत्, एकेन भवतैकया पद्धत्या बाहुल्येन प्रतिपादित निर्विरोधं स्यादिति यद्यपि नाद्भुतम्, एकव्यक्तिप्रतिपादितस्यैकविषयस्य तथात्वौचित्यात्, तथाप्यस्ति परमाश्चर्यमित्याह—**अतः परम् अद्भुतम्**—आश्चर्यं **किम्** ? यतः **बहु** प्रचुरम्, **नैकमार्ग** न एको नैक, नित्यत्वानित्यत्वादिविविधधर्मावलम्बनेन नानाप्रकारः एवंविधो मार्गः—प्रतिपादनशैली यस्य तादृशम्, **उक्तं** वचनम्, **निर्विग्रहं** निर्विरोध स्यात्, एतदवश्यमेव परमद्भुतमिति भावः । यद्वा **भवता** महावीरजिनेन, **च**कारादन्यजिनगणेन, कीदृशेन ? **बहुना** प्रचुरेण, देशान्तरितकालान्तरिततत्तज्जिनेनेत्यर्थः, **एकमार्गं** कथञ्चिन्नित्यत्वानित्यत्वाद्यनन्तधर्मात्मैकैकवस्तुप्रतिपादकत्वलक्षण एको मार्गः प्रतिपादनशैली यस्य तादृशं **निर्विग्रहं च** विरोधरहित च, **उक्तं** प्रतिपादनम्, **नामे**ति प्रसिद्धौ, प्रसिद्धमेवैतद्-यदुत, अखिलेनापि जिनेनानन्तधर्मात्मकवस्तुतत्त्वप्रतिपादकं विवादरहितं शासनमेकमेवोक्तमिति प्रवाहतोऽनाद्यनन्त चेद शासनम्, **अतः परम्** इतोऽधिकम्, **अद्भुतम्** आश्चर्यम्, **किं स्यात्** न किञ्चिद् भवेत्, अनेकेऽपि वक्तारो भिन्नसमयव्यवस्थिता अनाद्यनन्तसमयेऽप्येकमेव राद्धान्तं विवादविनिर्मुक्तमुक्तवन्त इति महदाश्चर्यमित्यर्थः ॥ ८ ॥

त्रिभुवनातिशायिनि भगवति जिने निरीक्षितेऽपि यो भवविरक्तो भवसन्तापरहितश्च न भवति नासौ जनो न वाऽतिगुणदोषज्ञ इत्याह—

अन्येऽपीति—'अन्येऽपि त्वयि विरूढसमानमाना. कक्षां निपीड्य मोहविजयायाभ्युत्थिताः, कृपणावसनास्ते तव गतिमप्राप्य हे वीर ! त्वामेव शरणमुद्वहन्तो ययु.' इत्यन्वय. । **अन्येऽपि** तीर्थान्तरीया अपि, **त्वयि** जिने, **विरूढसमानमानाः** विशेषेण रूढः–परिगृहीतः, समानो मानो यैस्ते विरूढसमानमानाः, यथा जिनो विषयासक्त्यादिकं परित्यज्य गृहीतवैराग्यदण्डोऽनशनादितपस्यया मोहं जितवान्, तथाऽहमपीत्येव विरूढसमानमानाः, **कक्षां निपीड्य** मोहविजयोपायसामग्रीसम्पादनलक्षणकक्षा नितरा पीडयित्वा–तद्गतविघ्नादिक्षुद्रोपद्रवशान्ति कृत्वा, यो हि समकक्षं–शत्रुं पराजयितुमिच्छति स स्वबलाधानाय कक्षां निपीडयतीत्युत्सर्ग., **मोहविजयाय** मोहलक्षणशत्रुविजयार्थम्, **अभ्युत्थिताः** सर्वप्रकारेण सम्भृतविजयसामग्रीकाः, एवमपि **कृपणावासनाः** कृपणं भावप्रधाननिर्देशात् कार्पण्यम्, अवसाने–अन्ते येषां ते कृपणावसानाः अथवा कृपणस्यावसान पर्यवसानं–परिसमाप्तिर्येषु ते कृपणावसानाः, तथाविधपत्यादिकरणसामर्थ्याभावादत्यन्तकृपणा. सन्तः, ते परवादिन', **तव** जिनस्य, **गतिं** मोहविजयादिपूर्वकमुक्तिधामगमनादिलक्षणा गतिम्, **अप्राप्य** अनासाद्य, हे वीर !, **त्वामेव शरणं** जिनमेव शरणभूतम्, **उद्वहन्तः** आश्रयन्तः, **ययुः** ते गतिं प्राप्तवन्तः ॥१०॥

हे जिन ! ग्रन्थरचनाद्यभिमानमपि परेषां त्वद्वचोव्याख्यानोद्यमारम्भाभाव एवेत्युपदर्शयति—

तावद् वितर्करचनापटुभिर्वचोभि-
र्मेधाविनः कृतमिति स्मयमुद्वहन्ति।
यावन्न ते जिन ! वचःस्वभिचापलास्ते
सिंहासने हरिणबालकवत् स्खलन्ति ॥११॥

तावदिति। वितर्करचनापटुभिर्वचोभिः कृतमिति स्मय तावन्मेधाविन उद्वहन्ति, हे जिन ! ते वचःस्वभिचापलास्ते यावन्न स्खलन्ति सिंहासने हरिणबालकवत्' इत्यन्वय. । **वितर्करचनापटुभिः** विशिष्टा या तर्कस्य रचना तस्या पटुभिः समर्थैः, **वचोभिः** वचनै., **कृतं** रचितमेतत् प्रकरणम्, **इति**

पृथग्भूय प्रकटीभवन्ति, अज्ञानान्धकार एव निमज्जन्तीति यावत्, अत्र निदर्शनं—**पाताललीनशिखराः** पाताले पातालसदृशे गिरिगुहादिगतनिम्नतमप्रदेशे लीनं—निमग्नं, शिखरं-स्वोपरितनभागो येषां ते पाताललीनशिखराः, **लोध्रवृक्षा** इव वृक्षविशेषा इव, यथा लोध्रवृक्षोऽल्पपरिमाणः सुगन्धरहितानल्पपुष्पभाराक्रान्तो वयसा नाढ्यो भवति किन्तु गिरिगुहान्धकारपरिगत एव भवतीत्यर्थः ॥१२॥

हे जिन ! सकलजनसाधारण्येनोपदेशं कुर्वतोऽपि भवतो यः कश्चिदभव्यो गाढमिथ्यात्वो भव्यो वा नोपदेशं गृह्णाति तत्र तस्यैव जीवस्य कर्मविस्फुरित-मित्युपदिशति—

सद्धर्मबीजवपनानघकौशलस्य
यल्लोकबान्धव ! तवापि खिलान्यभूवन् ।
तन्नाद्भुतं खगकुलेष्विह तामसेषु
सूर्यांशवो मधुकरीचरणावदाताः ॥१३॥

सद्धर्मेति—'हे लोकबान्धव ! सद्धर्मबीजवपनानघकौशलस्य तवापि यत् खिलान्यभूवन् तत् अद्भुतं न, इह तामसेषु खगकुलेषु मधुकरीचरणावदाताः सूर्यांशवः' इत्यन्वयः । हे **लोकबान्धव !** लोकानां त्रिभुवनवासिनाम्, अविशेषेण हितार्थं प्रवर्त्तमानत्वाद् बान्धव इव, **सद्धर्मबीजवपनानघकौशलस्य** सद्धर्म एव—परमपुरुषार्थमोक्षावन्ध्यकारणज्ञान-दर्शन-चारित्रलक्षणस्तत्कारणब्रह्मचर्याऽस्तेयादिलक्षणो वा सद्धर्म एव, बीजं—मोक्षानन्दकन्दजनकत्वेन बीजमिव, तस्य यदुपदेशद्वारा जीवात्मकक्षेत्रेषु वपनं तत्रानघ—निष्पापं विघ्नरहितमिति यावत्, कौशलं—नैपुण्यं यस्य स सद्धर्मबीजवपनानघकौशलस्तस्य, **तवापि** जिनस्यापि, **खिलानि** कानिचिदभव्यजीवक्षेत्राणि अकृष्टभूसमानि, यत्रोप्तं बीजं नाङ्कुरायालमिति, **खिलानि** सद्धर्मबोधरहितानि, **अभूवन्** अभवन्, यदेतत् तत् **अद्भुतं** आश्चर्यं न, अत्र निदर्शनम्—इह अस्मिन् लोके **तामसेषु** तमः—प्रधानेषु रात्रावेवान्धकारनिरन्तरापूरितप्रदेशे विहरमाणेषु घूकादिषु, **खगकुलेषु** पक्षिगणेषु, **सूर्यांशवः** सर्वजीवान् प्रत्यविशेषेण प्रकाशकारित्वैकस्वभावाः

हिततया दैवयोगात् सन्मार्गज्ञपुरुषस्य तन्मध्य एव सम्मेलनतस्तदुपदिष्टाभीष्टदेश-प्राप्तिमार्गज्ञानात् तन्मार्गानुसरणतोऽभीष्टदेशावाप्त्या विनाशाभावसम्भवादित्यर्थः ॥१४॥

हे जिन ! मा भवतु त्वच्छासनाधिगम, त्वद्रूपज्ञानमपि रागविनाशद्वारा भवोच्छेदप्रत्यलमित्याह—

तिष्ठन्तु तावदतिसूक्ष्मगभीरगाधाः
संसारसंस्थितिभिदः श्रुतवाक्यमुद्राः ।
पर्याप्तमेकमुपपत्तिसचेतनस्य
रागार्चिषः शमयितुं तव रूपमेव ॥१५॥

तिष्ठन्त्वति—'अतिसूक्ष्मगभीरगाधा श्रुतवाक्यमुद्रा. संसारसस्थितिभिदः तावत् तिष्ठन्तु, उपपत्तिसचेतनस्य रागार्चिष' शमयितु तव रूपमेवैक पर्याप्तम्' इत्यन्वयः । **अतिसूक्ष्मगभीरगाधाः** अतिसूक्ष्म—स्थूलधियामगोचर क्षयोप-शमविशेषशालिपुरुषगम्यं, गभीरं—गूढं, गाधं—हृदय तात्पर्य येषा ते अति-सूक्ष्मगभीरगाधाः. **श्रुतवाक्यमुद्राः** श्रुतस्य—द्वादशाङ्गीलक्षणशासनस्य, यानि वाक्यानि तेषा मुद्रा.—अनेकान्तद्योतकतत्तद्धर्मावच्छेदबोधकतत्तन्नयभेदगर्भार्थ-स्याच्छब्दा., स्यात्पदाङ्कितास्तित्व-नास्तित्वादितत्तन्नयाभिमतावच्छेदभेदनियन्त्रितानेकान्तधर्मप्रतिपादकश्रुतवाक्यानीति यावत्, **संसारसंस्थितिभिदः** ससारस्य—चतुर्विधगतिभ्रमणलक्षणससरणस्य संस्थितीनाम्—ईदृशकर्मकर्तुरीदृशं ससरणमित्यादि-स्थितीनाम्, भिद्—भेदो याभिस्ता. संसारसंस्थितिभिद, **तिष्ठन्तु तावत्** सन्तु तावत्, जैनागमार्थं सम्यग् जानन्तः ससारस्वरूपाभिज्ञा' सन्तस्ततो विरक्ता. स्युरेवेत्यभिसन्धि **उपपत्तिसचेतनस्य** युक्तियुक्तविशिष्टज्ञानशालिनः पुस., **रागार्चिषः** पुत्र-कलत्र-धनादिकामनाग्नीन्, **शमयितुं** विनाशयितुम्, हे जिन ! तव **रूपमेव** शस्त्रादिहीनकरादिघटितशरीरस्वरूपमेव, **एकं** केवलम्, **पर्याप्तं** समर्थम्, यदाह—

"प्रशमरसनिमग्नं दृष्टियुग्मं प्रसन्नं, वदनकमलमङ्कः कामिनीसङ्गशून्य' ।
करयुगमपि यत् ते शस्त्रसम्बन्धवन्ध्य, तदसि जगति देवो वीतरागस्त्वमेव ॥१॥"

सत्त्वोपघातेति–'हे जिन ! येषां मनस्सु तव वाग्द्युतयो न भान्ति [ते] सत्त्वोपघातनिरनुग्रहराक्षसानि वक्तृप्रमाणरचितान्यहितानि पीत्वा तमसस्तमोऽद्वारकं विशन्ति' इत्यन्वयः । हे **जिन !** राग-द्वेषाद्यखिलभावारातिजयावाप्तकेवल ज्ञानशालिभगवन् ! **येषां** परवादिविप्रतारिताना मूढानाम्, **मनस्सु** अन्तःकरणेषु, **तव** जिनस्य, **वाग्द्युतयः** अनेकान्ततत्त्वप्रतिपादकस्याद्वादोद्द्योताः, **न भान्ति** समीहितार्थतत्त्वतात्पर्यवत्तया न प्रकाशन्ते, यत्तदोर्नित्यसम्बन्ध इति येषामिति पदोक्तिबलात् ते इति पदमनुक्तमप्युपस्थितं भवति, ते जिनवाक्यद्युतिप्रकाशानाचान्तहृदया, **सत्त्वोपघातनिरनुग्रहराक्षसानि** सत्त्वाः–प्राणिनस्तेषामुपघातो–वध-पीडादिस्तत्र निरनुग्रहाणि–अनुकम्पादिरक्षणानुग्रहरहितानि, राक्षसानि–राक्षससदृशानि 'रक्षस्'शब्दो नपुंसके वर्तते, रक्षांसि एवेति स्वार्थेऽणि राक्षसानि, "प्रकृतेर्लिङ्गवचने बाधन्ते स्वार्थिकाः क्वचित्" इत्यत्र क्वचिद्ग्रहणाद् यथा प्रकृता यवागूः–'यवागूमयी, यवागूमयम' इत्यत्र विकल्पेन लिङ्गातिवर्तनं भवति तथा प्रस्तुतेऽपि विकल्पेन लिङ्गपरिवर्तनान्नपुंसकत्वं पुंस्त्वं च, तत्र नपुंसकत्वादरोऽत्रेत्याभाति, **वक्तृप्रमाणरचितानि** वक्तैव प्रमाणं वक्तृप्रमाणं तेन रचितानि, अथवा वक्तुः प्रमाणं– वक्तृमात्रानुमतं प्रमाणं वक्तृप्रमाणं तेन रचितानि, अस्मिन्नप्यर्थे वक्तैव प्रमाणं वक्त्रभिमतप्रमाणमिति कृत्वा वक्तृकल्पनामात्ररचितानीति यावत्, **अहितानि** न विद्यते प्रतिपाद्यत्वेन हितं येषु तान्यहितानि हितप्रतिपादकत्वाभाववन्ति, अथवाऽहितप्रतिपादकवचनमहितमित्युच्यत इत्यहितप्रतिपादकानि वचनानि, वक्ष्यमाणपानक्रियाद्यनुरोधात् तादृशवचनरूपाणि मद्यानीत्यर्थः, **पीत्वा** यथा हृदयं तदार्द्रं भवति तथा निपीय, **तमसस्तमः** अत्यन्तनिबिडमन्धकारं महामोहान्धकारमिति यावत्, **अद्वारकं** न विद्यते द्वार–बहिर्निर्गमनमार्गो यत्र तदद्वारकम्, तदन्तःप्रविष्टस्य बहिर्निर्गमनं न भवतीति यावत्, **विशन्ति** प्रविशन्ति, अन्धे तमसि प्रविष्टास्ते तत्रैवावतिष्ठन्ते न पुनर्महामोहविमुक्ता भवन्तीत्यर्थः ॥१७॥

जिनशासनविमुखेषु परवादिषु महामोहविजृम्भितमसाधारणमित्युपदर्शयति—

दग्धेन्धनः पुनरुपैति भवं प्रमथ्य

॥र **भीरुनिष्ठम्** ।

जिनस्तु भगवान् पुण्य-पापयोर्यथार्थस्वरूपाभिज्ञोऽपि पाप-पुण्योभयमपि ज्ञानाग्निनाऽधाक्षीदिति वैशिष्ट्यमुपदर्शयति-

पापं न वाञ्छति जनो न च वेत्ति पापं
पुण्योन्मुखश्च न च पुण्यपथः प्रतीतः।
निःसंशयं स्फुटहिताहितनिर्णयस्तु
त्वं पापवत् सुगत! पुण्यमपि व्यधाक्षीः ॥१९॥

पापं न वाञ्छतीति—"जनः पापं न च वाञ्छति पापं न च वेत्ति, पुण्योन्मुखश्च न च पुण्यपथः प्रतीतः, सुगत! निःसंशयं स्फुटहिताहितनिर्णयस्त्वं तु पापवत् पुण्यमपि व्यधाक्षीः" इत्यन्वयः। **जनः** अनधीतजिनशासनो लौकिकपरीक्षकसाधारणः पुरुषः, **पापं** नरकादिदुःखनिमित्तमशुभं कर्म तत्प्रभवमहितसाधनमदृष्टं च, **न वाञ्छति** नेच्छति, पापं मे भवत्वितीच्छावान् न भवतीति यावत्, **च** पुनः, **पापं** निरुक्तस्वरूपमदृष्टम्, **न वेत्ति** न जानाति, **च** पुनः, **पुण्योन्मुखः** पुण्यं मे भवत्वित्यभिलाषावान् पुरुषः, **च** पुनः, **न** नैव, **पुण्यपथः प्रतीतः** तेनेत्यध्याहार्यम्, तथा च निरुक्तजनेन पुण्यमार्गो नैव ज्ञातः, यद्वा "न च पुण्यपथप्रतीतः" इति पाठः, प्रतीतः—ज्ञातः पुण्यपथो येन स तथा, एवंविधो न आहिताग्न्यादिपाठात् पुण्यपथशब्दस्य प्राग् निपातः, यद्वा "न च पुण्यपथं प्रतीतः" इति पाठः पुण्यमार्गं प्रति न इतः—गत इति तदर्थः, यदि पापस्वरूपं सम्यग् जानीयात् तदैव पापमकामयमानो जनः पापप्रवृत्तिको न भवेत्, तथा च पापफलभुगपि न भवेत्, अन्यथा पापस्वरूपानिष्टत्वाप्रतिसन्धानात् अपरित्यक्तपापकर्मा तत्फलमश्नीयादेव, एवं पुण्यमार्गाभिज्ञ एव यथावत् पुण्यमार्गानुष्ठानतः पुण्यफलं स्वर्गादिकं प्राप्नुयात्, अन्यथा तु पुण्यमार्गमजानन् यथावत् पुण्यकर्माननुष्ठानात् पुण्याभिलाष्यपि पुण्यफलं नाश्नीयादेवेत्याशयः, **सुगत!** गत्यर्थानां ज्ञानार्थत्वेन ज्ञानार्थत्वाद् वर्तमाने कर्तरि क्तः, तथा च पुण्यपापयोः सम्यग्ज्ञाता सुगतः, तत्सम्बोधने हे सुगत! जिन!, **निस्संशयं** संशयरहितं यथा स्यात् तथा, **स्फुटहिता-ऽहित-**

च विनङ्क्ष्यतीति, तीर्थ्यान्तरीयोपदेशसन्तुष्टो जनस्तीर्थ्यान् स्वहृदयस्थान् करोति, किन्तु प्रतारणफलकैर्वचनैर्जनस्य तात्कालिकदुःखाभावेऽपि सत्कारलाभाद्यसत्प्रवृत्तितोऽशुभकर्मबन्धत उत्तरकाले दुःखं स्यादेवेति, यद्वा तीर्थान्तरीयाः प्रतारणोपदेशदानेन पापकर्मबन्धतः स्वयमपि प्रान्ते दुःखिनो भवन्तीति तेऽपि दुःखद्वेषिजनान्तर्गता भवन्तीति भाव. । हे जिन ! त्वं, **लोकप्रपञ्चविपरीतं** लोकाना य. सत्कारलाभपूजाख्यात्याद्यवाप्तिप्रयोजनकः प्रपञ्चः, ततो विपरीतं लोकप्रपञ्चरहितम् , **अधीरदुर्गं** धीराः—धैर्यवन्तः, न धीरा अधीरा धैर्यविकलाः, तेषा दुःखेन गन्तु शक्यम् , सुखेनाधीरगमनायोग्यम् , **अविदूरसुखं** विशेषेण दूर विदूरम् , न विदूरमविदूरं समीपमिति यावत्, अविदूर सुख यस्य तदविदूरसुखम् , एतादृश **श्रेयःपथं** श्रेयसः—मोक्षस्य, मार्ग—ज्ञान-दर्शन-चारित्रलक्षण-मोक्षसाधनम्, **चकर्ष** दुःखद्विष जन निरुक्तश्रेय पथ प्रत्याकृष्टवान् , जिनस्तथोपदिदेश येनोपदेशेन दुःखद्विड् जनो मोक्षमार्गं जिनोपदिष्टमेवानुसरति, ततो नातिचिर ससारदुःखविमुक्तो मोक्षसुखमनुभवतीत्यर्थः । अथ 'चकर्ष' इति स्थाने मध्यमपुरुषत्वात् 'चकर्षिथ' इति प्रयोगेण भाव्यम् , कथ स न इति चेत् ? वेदावाक्यवत् पुरुषव्यत्ययादरात् , यद्वा 'त्वम्' इति स्थाने 'तम्' इति दुःखद्विषमित्यस्य परामर्शकः पाठः, भवानिति चाध्याहार्यम् , तदपेक्षया तृतीयपुरुषः, यथा भवान् गच्छतीति, यद्वा 'ह्यकर्षः' इति पाठः, **हि** निश्चयेन त्वम् **अकर्षः** आकृष्टवान् , यद्वा 'च कर्षन्' इति पाठः, असीति शेषः, सर्वत्रापि दुःखद्विषो मुक्तिमार्गं प्रति नयनं जिनकृतमिति फलति, यद्वा 'च कर्ष' इति विश्लेषः; **कर्ष** नय, दुःखिनां मुक्तिं प्रति जिनकृतं नयन प्रार्थयामहे इत्यर्थः ॥२०॥

हे जिन ! त्वद्वाक्यपवित्रितान्तःकरणाना जनाना सुरेन्द्रे तिर्यक्षु च स्वोपार्जितकर्मकृतोत्कृष्टापकृष्टभेददर्शनजन्यः खेदो न भवति, परसिद्धान्तालीढहृदयाना च "ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् श्वभ्रं वा स्वर्गमेव वा" इत्यादिवचनादीश्वर एव कञ्चन जीव नरके पातयति कञ्चन स्वर्गं नयतीतीश्वरकृतैतद्वैलक्षण्यं ज्ञात्वा सुखिन एव सर्वान् विधातुं समर्थोऽपीश्वरः कथं दुःखिनमपि विदधाति, एवं विषमं विदधतस्तस्य रागद्वेषौ स्यातामित्येवं विकल्पजनितः खेदः स्यादेवेति जिनवचनमेवादेयमित्युपदर्शयति—

आत्मनो यथार्थस्वरूपाभिज्ञो नष्टकामवासनः कृतकृत्यत्वान्न वनवासादिषु पुन. प्रवर्तत इत्याह—

कुर्वन् न मारमुपयाति न चाप्यकुर्वन्
नास्यात्मनः शिवमहर्द्धयबलं निधानम् ।
वेदन् तमेवमवसादितवेदमत्त्वाद्
भूयो न दुःखगहनेषु वनेषु शेते ॥२४॥

कुर्वन्निति—'कुर्वन् मार नोपयाति, च अकुर्वन्नपि न, अस्यात्मन. शिवमहर्द्धि निधानमबलं न, तमेवं वेदन् अवमादितवेदमत्त्वाद् भूयो दुःखगहनेषु वनेषु न शेते' इत्यन्वयः। **कुर्वन्** य. कर्माणि कुर्वन् सन्, **मारं** कामम्, **नोपयाति** न प्राप्नोति, **च** पुन॰, **अकुर्वन्नपि** कर्माण्यकुर्वन् अपि, **न** नैव, मारमुपयातीति सम्बध्यते, एवविधस्य **अस्य** प्रत्यक्षादिप्रमाणसिद्धस्य. **आत्मनः** जीवस्य, **शिवमहर्द्धि** शिव–मोक्षसुखं तदेव महर्द्धिर्यत्र तच्छिवमहर्द्धि, **निधानं** ज्ञानादिरत्ननिधि, **अबलं** दुर्बलम्, **न** सर्वतोऽन्यनिधानात् प्रबल न कदाप्यपक्षीयते, **तमेवं वेदन्** शिवमहर्द्धिनिधिकमात्मानं जानन् पुरुषः, विदिण् चेतनादौ चुरादिः, चुरादिणिचोऽनित्यत्वात् शतरि शवि सौ च वेदन्, यद्वा विद्वानिति पाठ॰, **अवसादितवेदमत्त्वात्** अवसादिता–प्रक्षीणा, वेदस्य–पुंवेदादे.; मा–लक्ष्मीर्यस्य सोऽवसादितवेदमत्त्वात्, यद्वा "मत्त्वाद्" इति स्थाने "सत्त्वाद्" इति पाठः, दूरीकृतकामवासनाप्रयोजकवेदाख्यकर्मसत्तात इति तदर्थः। **भूयः** पुनरपि, **दुःखगहनेषु** व्याघ्रादिनिवासेन दु.खप्रचुरेषु, **वनेषु** कण्टकवृक्षादिसमुदायाकीर्णाविनिषु, **न शेते** न तप॰परिश्रमोपजातनिद्रासुखमनुभवति, आत्मस्वरूपावस्थितिसुखमनुभवन् कृतकृत्यो न गिरिकन्दरगहनवनादिषु तपस्यतीत्यर्थः. ॥ २४ ॥

हे जिन ! तीर्थान्तरीयानधिगतनीतिस्वामित्वेन स्तुत्यस्त्वमेवेत्युपदिशति—

कर्त्ता न कर्मफलभुग् न च कर्मनाशः
कर्त्रन्तरेऽपि च न कर्मफलोदयोऽस्ति ।

यैरेव हेतुभिरनिश्चयवत्सलानां
सत्त्वेष्वनर्थविदुषां करुणापदेशः ।
तैरेव ते जिन ! वचस्स्वपरोक्षतत्त्वा
माध्यस्थ्यशुद्धमनसः शिवमाप्नुवन्ति ॥२२॥

यैरेवेति–'यैरेव हेतुभि', अनिश्चयवत्सलानाम्, सत्त्वेषु अनर्थविदुषा करुणापदेश', हे जिन ! तव वच सु [समधिगतेषु] तैरेव अपरोक्षतत्त्वा माध्यस्थ्यशुद्धमनसः शिवमाप्नुवन्ति' इत्यन्वयः । यैरेव **हेतुभिः** मिथोविरोधमापन्नैरेकान्तवादोपदर्शितैर्हेतुभूतैर्युक्तिजालै', **अनिश्चयवत्सलानाम्** अनिश्चयः–निश्चयाभावः संशय इति यावत्, स वत्सल· प्रियो येषा तादृशानाम्, स्वाभ्युपगतैकान्तनित्यत्वादिवादे पराभ्युपगतैकान्तानित्यत्ववादिवादोपदर्शितयुक्तिकलापविरोधतो न निर्णयं कर्तुं प्रगल्भन्ते, एव स्वानभ्युपगतैकान्तानित्यत्ववादमपि स्वाभ्युपगतैकान्तनित्यत्वादिवादोपदर्शितयुक्तिकलापविरोधतो न निर्णेतु प्रभवन्ति, तथा च किमिदं तथ्यमिद वेति सशयदोलामधिरूढानामेकान्तादिनामित्यर्थ, पुनः कीदृशानाम् ? यैरेव **हेतुभिः** इष्टवियोगानिष्टसयोगादिभि·, **सत्त्वेषु** विषमदशामापन्नेषु जीवेषु, **अनर्थविदुषाम्** अनिष्ट परिभावयताम्, **करुणापदेशः** अरे ! किमस्य पामरस्याभूद् भवति भविष्यति चेत्यादिकरुणात्मकं वचनमात्रं भवति, हे जिन ! **तव** भवत· **वचःसु** 'स्यान्नित्य स्यादनित्यः, इष्टवियोगादिसम्पादिता विपदावली स्वकृतकर्मण एव फलम्' इत्यादिप्रतिपादकेषु जिनवचनेषु समधिगतेषु सत्सु, **तैरेव** स्यात्कारसस्कृतै', दु खं स्वकृतकर्मण एव फलमित्यादिवचनानुसहितै· पूर्वोक्तैरेव हेतुभि·, **अपरोक्षतत्त्वाः** साक्षान्निर्णीततत्त्वा', पुन· **माध्यस्थ्यशुद्धमनसः** माध्यस्थ्येन–तटस्थभावेन, राग-द्वेषराहित्येन शुद्ध–शोकाद्यनाकुलतया पवित्र मनो येषा तादृशा जिनभक्ताः, **शिवं** मोक्षसुखम्, आप्नुवन्ति प्राप्नुवन्तीत्यर्थ· ॥ २२॥

हे जिन ! भवन्तमाश्रितानामनेकजन्मार्जितानामपि गुणाना क्षणेन विनाश एव भवति, कुतस्तत्फलोपभोग ? त्वद्विमुखस्तु जनो व्यसनोपबृंहितानि

हे जिन ! भीतस्य तव वीरेति नामकरणममरेन्द्रस्याबोधविजृम्भितमेवेति निन्दाव्याजेन स्तुतिमाह—

भीरोः सततस्तव कथं त्वमरेश्वरोऽसौ
वीरोऽयमित्यनवधाय चकार नाम ।
मृत्योर्न हस्तपथमेत्य बिभेति वीर-
स्त्वं तस्य गोचरमपि व्यतियाय लीनः ॥२६॥

भीरोरिति–'हे जिन ! असौ त्वमरेश्वरः, भीरोः सततस्तवानवधाय वीरोऽयमिति नाम कथं चकार, वीरो मृत्योर्हस्तपथमेत्य न बिभेति, लीनस्त्वं तस्य गोचरमपि व्यतियाय' इत्यन्वयः । हे जिन ! **असौ** सर्वलौकिकपरीक्षकप्रसिद्धः, **अमरेश्वरः** शक्रेन्द्रः, **भीरोः सततस्तव** भयशालिनः सततस्तव, **अनवधाय** तव स्वभावमविज्ञाय, **वीरोऽयमिति** अयं वीरपदवाच्य इत्येवं, **नाम** संज्ञाम्, **कथं चकार** केन हेतुना कृतवान्, अहं भीरुरित्येव त्वं कथं ज्ञातवानसि येन भीरोः सत इति कथयसीति भगवता पृष्ट इवाह—**मृत्योरि**ति–यमस्येत्यर्थः, **हस्तपथं** हस्तमार्गम्, **एत्य** प्राप्य, **वीरः** पराक्रमशाल्युत्साहवान् पुरुषः, **न बिभेति** न जातुचिद्भयवान् भवति, **लीनस्त्वं** अत्यन्तविदूरं यत्र मृत्युरपि न यातुमलं तादृशलोकाग्रव्यवस्थितं मुक्तिधाम गतस्त्वम्, **तस्य** मृत्योः, **गोचरमपि** चक्षुरादिप्रचारप्रदेशमपि, **व्यतियाय** व्यतिक्रान्तवानसि, यो यतो भीतः स तथा गुप्तस्थानं गत्वा लीनो भवति यथा तस्य दृष्टिगोचरोऽपि न भवतीति लोकस्थितिरित्यर्थः ॥२६॥

हे जिन ! रवि-शशिप्रकाशातिशायिप्रकाशस्त्वमसीति स्तूयसे विज्ञैरित्याह—

नादित्यगर्वजमहस्तव किञ्चिदस्ति
नापि क्षपा शशिमयूखशुचिप्रहासा ।
रात्रिंदिनान्यथ च पश्यसि तुल्यकालं
कालत्रयोत्पथगतोऽप्यनतीतकालः ॥२७॥

वीर ! त्वमेव तु जगत्यसपत्नवीर-
स्त्रैलोक्यभूतचरिताप्रतिघप्रकाशः ॥२८॥

चन्द्रांशव इति–'कमलगर्भविषक्तमुग्धाश्चन्द्रांशव, कुमुदोदरेष्वजातकिरणः सूर्योऽपि, हे वीर ! त्रैलोक्यभूतचरिताप्रतिघप्रकाशो जगत्यसपत्नवीरस्त्वमेव तु' इत्यन्वयः । **कमलगर्भविषक्तमुग्धाः** कमलगर्भे सङ्कुचितपद्मपत्रनिचये, विषक्ते–मध्ये विशेषेण सम्बन्धे, मुग्धाः–असमर्थाः कातरा, अन्तः प्रविश्य कमल प्रकाशयितुमनिपुणा इति यावत्, **चन्द्रांशवः** चन्द्रकराः, **कुमुदोदरेषु** रात्रौ विकाशिनि दिवसेऽविकाशिनि पुष्पविशेषे कुमुदसंज्ञा, कुमुदस्य पुष्पविशेषस्य उदरेषु–गर्भभागेषु, **अजातकिरणः** एतत्स्थाने 'अयातकिरण' इति पाठः सम्यगाभाति, अयाता अप्रविष्टाः किरणा यस्य सोऽयातकिरण, कुमुदोदरप्रवेशपराङ्मुखकिरणः, **सूर्योऽपि** दिनकरोऽपि, हे वीर ! **त्रैलोक्यभूतचरिताप्रतिघप्रकाशः** त्रैलोक्ये त्रिभुवने यानि भूतानि तेषा चरितेषु--हिताहिताचरणेषु, अप्रतिघ. प्रतिबन्धरहित. प्रकाशो यस्य स त्रैलोक्यभूतचरिताप्रतिघप्रकाशः, त्रैलोक्यगताशेषभूताचरणप्रकाशक इत्यर्थ., **जगति** ससारे **असपत्नवीरः** सपत्न. प्रतिपक्षो वीरो यस्य स सपत्नवीरः, न विद्यते सपत्नवीरो यस्य सोऽसपत्नवीरः, अन्यानभिभवनीयपराक्रमशालीत्यर्थः, तुर्विशिनष्टि–**त्वमेव** भवानेव, त्वत्तोऽन्य ईदृशो नास्तीत्यर्थ· ॥२८॥

चन्द्र सूर्याप्रकाश्यप्रकाशकजिनप्रकाशविभव मातुं न कोऽपि समर्थ इत्यमेयप्रकाशविभवस्त जिनस्तौति इति—

यश्चाम्बुदोदरनिरङ्कुशदीप्तिरर्क-
स्तारापतिश्च कुमुदद्युतिगौरपादः ।
ताभ्यां तमोगुपिलमन्यदिव प्रकाश्यं
कस्तं प्रकाशविभवं तव मातुमर्हः ॥२९॥

यश्चेति–अन्वयो यथाश्रुतानुसार्येव । **यश्च** यत्तदोर्नित्यसम्बन्ध इति ताभ्यामित्युत्तरस्यतच्छब्दाभिसम्बद्धो य इति–य. पुन', **अम्बुदोदरनिरङ्कुशदीप्तिः**

त्वम्, **न ज्ञातवानसि** वर्तमानकालिकज्ञानवांस्त्व न, हे **अच्युत !** सर्वदा अविनाशिस्वरूप ! **ते** तव, **वेद्यं** ज्ञातव्यम्, **नास्ति** न विद्यते, अच्युतेति सबोधनसामर्थ्यादव नार्थान् विवित्ससीत्यादिनिषेधाना समन्वयो भगवत्युपपद्यते, अविनाशिनि भगवति विनाशिवर्त्तमान भविष्यदतीतज्ञानसम्बन्धस्य तादात्म्यलक्षणस्याम्भवादिति बोध्यम्, **त्रैलोक्यनित्यविषमं** त्रयाणा लोकाना समाहार एव त्रैलोक्यं तस्मिन् नित्य–सर्वदा, विषमं–किञ्चिदिष्ट किञ्चिदनिष्टं किञ्चदुपेक्ष्यं यदेवैकस्य दुःखसाधन तदेवान्यस्य सुखसधन यदेवैकस्य मित्र तदेवान्यस्य शत्रुरित्येव विषमम्. **विश्वं**–निखिलं वस्तु, **पश्यसि** साक्षात्करोषि, ततः **अचिन्त्यचरिताय** अचिन्त्यं चिन्तयितुमशक्यम्, चरितमाचरणं यस्य सोऽचिन्त्यचरितस्तस्मै, **तुभ्य** भगवते वीराय, **नमः** स्वावधिकोत्कृष्टत्वप्रकारकज्ञानानुकूलव्यापारलक्षणो नमस्कार., **अस्तु** भवत्वित्यर्थ. ॥३०॥

अद्भुतोऽप्यशेषपदार्थस्वभावो जिनज्ञानसमुद्रान्तर्गतः समान एवेति जिनेनाद्भुतो भवतीत्याह—

शब्दादयः क्षणसमुद्भवभङ्गशीलाः
संसारतीरमपि नास्त्यपरं परं वा।
तुल्यं च तत् तव तयोरपरोक्षगाप्सु
त्वय्यद्भुतोऽप्ययमनद्भुत एव भावः ॥३१॥

शब्दादय इति—'शब्दादयः क्षणसमुद्भुवभङ्गशीला., अपर परं वा ससारतीरमपि नास्ति, तव अपरोक्षगाप्सु तयोस्तत् तुल्यम्, अद्भुतोऽप्ययं भावः, त्वयि अनद्भुत एव' इत्यन्वय. । **शब्दादय** इति—आदिपदादन्यपदार्थानामुपग्रहः, बौद्धादिशैलीमनरुध्यादौ शब्दोपन्यास, **क्षणसमुद्भवभङ्गशीलाः** क्षणे–एकैकस्मिन् अविभाज्यकालांशे, यः समुद्भवः–वर्तमानपर्यायापेक्षया समुत्पत्तिः, यश्च भङ्गः–पूर्वपर्यायापेक्षया विनाश., तौ शीलं—स्वभावो येषा ते तथा, यद्वा क्षणे–वर्तमानक्षणे वर्तमानपर्यायापेक्षया यः समुद्भवः, यश्च क्षणे–तदव्यवहितोत्तरक्षणे वर्तमानपर्यायस्य भङ्गः, तौ शीलं येषा ते तथा, यद्वा क्षणेन

अनन्यमतिरिति—' जिन ! यदाऽनन्यमतिरीश्वरोऽपि, शाश्वतीः समाः, गुणवाक् तव गुणलोकपारमनुमातुमीशो न, [तदेति शेष] पृथग्जनलघुस्मृतिरहं किमेव वक्ष्यामि, इदं तु मनोरथविनोदचापलं न सिद्धये' इत्यन्वयः । हे **जिन** !, यदा **अनन्यमतिः** अन्या–अन्यविषया जिनगुणव्यतिरिक्तपदार्थविषयेति यावत् ; मतिः–ज्ञानं यस्य सोऽन्यमतिः, नान्यमतिरनन्यमतिः, यद्यपि सर्वदा सर्वविषयकज्ञानवानीश्वरः कदाप्यनन्यमतिर्न भवत्येव तथाप्युत्प्रेक्ष्यते—शङ्के अनन्यमतिरिति, जिनगुणैकतानचित्तः, **ईश्वरोऽपि** ऐश्वर्यशाल्यपि पुरुषोत्तमः, **शाश्वतीः समाः** असङ्ख्येयवर्षं यावत्, **गुणवाक्** गुणवचनतत्परः, **तव** जिनस्य, **गुणलोकपारं** गुणनिकरान्तम्, **अनुमातुम्** एतावन्तो जिनस्य गुणा इत्येवं परिच्छित्तिविषयं कर्तुम्, **ईशः** समर्थः, **न** नैव, यदेश्वरोऽपि तव गुणनिकरपरिच्छित्तिकरणे न समर्थस्तदा, **पृथग्जनलघुस्मृतिः** रथ्यापुरुषादिसाधारणजनवदल्पविषयकस्मरणवान् यावदनुभूतं तावदपि स्मर्तुमसमर्थः कतिपयानुभवविषयविषयकस्मरणवानिति यावत्, **अहं** सिद्धसेनदिवाकरः, **किमेव वक्ष्यामि** न वक्तुं योग्योऽस्मि, तर्हि किमिदं क्रियत इत्याकाङ्क्षायामाह–**इदं त्विति**— प्रस्तुतजिनगुणवर्णनं पुनरित्यर्थः, **मनोरथविनोदचापलं** मनोरथः त्वद्गुणगानकरणाभिलाष, विनोदः–त्वद्गुणगानजन्यानन्दोल्लासः, तत्सम्पादनाय, चापलं बालचेष्टितम्, **नः** अस्माकम्, **सिद्धये** मोक्षसुखाय, क्रीडया कृतमपि जिनस्तवनं भक्तिभरोल्लसितं परम्परया मोक्षप्राप्तये स्यादेवेत्यर्थः । "जसौ जसयला वसु-ग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरु" इति लक्षणलक्षितत्वात् पृथ्वीवृत्तमिदम् ॥३२॥

गम्भीरार्थसमष्टिमात्रखचिता क्वेयं स्तुतिर्दुर्ग्रहा
क्वाहं मन्दमतिस्तदर्थकरणे वैषम्यमेतत् परम् ।
व्याख्यानाज्ञतया तु खेलतुतरां वीरो मनोमन्दिरे
भावं मन्दतरोऽवगच्छतु ततो यत्नो ममायं फली ॥१॥

इति श्रीतपोगच्छाधिपति-शासनसम्राट्-सर्वतन्त्रस्वतन्त्र–श्रीविजयनेमिसूरीश्वर-पट्टालङ्कारेण व्याकरणवाचस्पति-शास्त्रविशारद-कविरत्नेतिपदालङ्कृतेन श्रीविजयलावण्यसूरिणा विरचितायां किरणावलीनाम्न्यां विवृतौ द्वितीया द्वात्रिंशिकाव्याख्या समाप्ता ॥

द्वाविमौ–पृथग्राशीकृतौ, पुरुषौ–पुरुषोपाधित्वेन पुरुषशब्दव्यपदेश्यौ, लोके–संसारे, कौ तावित्याह–क्षरश्चाक्षर एव च, क्षरतीति क्षरो विनाशी कार्यराशिरेकः पुरुषः, न क्षरतीत्यक्षरो विनाशरहितः, क्षराख्यस्य पुरुषस्योत्पत्तिबीजं भगवतो मायाशक्तिर्द्वितीयः पुरुषः, तौ पुरुषौ व्याचष्टे स्वयमेव भगवान्–'क्षरः सर्वाणि भूतानि'–समस्त कार्यजातमित्यर्थः, कूटस्थः–कूटो यथार्थवस्त्वाच्छादनेनायथार्थ–वस्तुप्रकाशनं वञ्चनं मायेत्यनर्थान्तरम्, तेनावरणविक्षेपशक्तिद्वयरूपेण स्थितः कूटस्थः, भगवान् मायाशक्तिरूपः कारणोपाधि संसारबीजत्वेनानन्त्यादक्षर उच्यते, केचित् तु–क्षरशब्देनाचेतनवर्गमुक्त्वा 'कूटस्थोऽक्षर उच्यते' इत्यनेन जीवमाहुस्तन्न सम्यक्, क्षेत्रज्ञस्यैवेह पुरुषोत्तमत्वेन प्रतिपाद्यत्वात्, तस्मात् क्षराऽक्षरशब्दाभ्यां कार्यकारणोपाधी उभावपि जडावेवोच्येते इत्येवमुक्तम् ॥ १६ ॥(१)

आभ्यां क्षराऽक्षराभ्यां विलक्षणः क्षराऽक्षरोपाधिद्वयदोषेणास्पष्टो नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव उत्तमः–उत्कृष्टतमः पुरुषस्त्वन्य –अन्य एवात्यन्तविलक्षणः, आभ्यां क्षराऽक्षराभ्यां जडराशिभ्यामुभयभासकस्तृतीयश्चेतनराशिरित्यर्थः, परमात्मेत्युदाहृतः–अन्नमय-प्राणमय-मनोमय-विज्ञानमया-ऽऽनन्दमयेभ्यः पञ्चभ्योऽविद्या–कल्पितात्मभ्यः परमः–उत्कृष्टोऽकल्पितो "ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा" [तैत्ति. २।५] इत्युक्त आत्मा च सर्वभूतानां प्रत्यक्चेतन इत्यतः परमात्मेत्युक्तो वेदान्तेषु, यः परमात्मा लोकत्रय–भूर्भुवःस्वराख्यं, सर्वं जगदिति यावत् आविश्य–स्वकीयया मायाशक्त्याऽधिष्ठाय बिभर्ति–सत्तास्फूर्तिप्रदानेन धारयति पोषयति च, कीदृशः ? अव्ययः–सर्वविकारशून्यः, ईश्वरः–सर्वस्य नियन्ता नारायणः, स उत्तमः पुरुषः परमात्मेत्युदाहृत इत्यन्वयः, "स उत्तमः पुरुषः" [छा. ८।१२।३] इति श्रुतेः ॥ १७ ॥ (२)

इदानीं यथाव्याख्यातेश्वरस्य क्षराऽक्षरविलक्षणस्य पुरुषोत्तम इत्येतत्प्रसिद्धनामनिर्वचनेन ईदृशः परमेश्वरोऽहमेवेत्यात्मानं दर्शयति भगवान् "ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहं तद्धाम परमं मम" इत्यादिप्रागुक्तनिजमहिमनिर्धारणाय–यस्मात् क्षरकार्यत्वेन विनाशिनं मायामयं संसारवृक्षमश्वत्थाख्यम्, अतीतः अतिक्रान्तः, अहं परमेश्वरः, अक्षरादपि–मायाख्यादव्याकृतात् "अक्षरात् परतः परः" इति पञ्चम्यन्ताक्षरपदेन श्रुत्या प्रतिपादितात् संसारवृक्षबीजभूतात् सर्वकारणादपि,

हे वीर ! त्वदाश्रयणकृतादरा अनेकान्तवादिन एकान्तवादिभिः शठैरपाकृता अपि सुखमध्यासत इति लोकानां त्वमेव शरणमसीत्याह—

व्यलीकपथनायकैर्हृतपरिश्रमच्छद्मभि-
र्निरागसि सुखोन्मुखे जगति यातनानिष्ठुरैः ।
अहो ! चिरमपाकृताः स्म शठवादिभिर्वादिभि-
स्त्वदाश्रयकृतादरास्तु वयमद्य वीर ! स्थिताः ॥२॥

व्यलीकपथनायकैरिति । "हे वीर ! व्यलीकपथनायकैर्हृतपरिश्रमच्छद्मभिर्निरागसि सुखोन्मुखे जगति यातनानिष्ठुरैः शठवादिभिर्वादिभिः, चिरमपाकृताः स्म वयम्, अद्य अहो त्वदाश्रयकृतादरास्तु स्थिताः" इत्यन्वयः । **व्यलीकपथनायकैः** व्यलीकः—अभीष्टप्राप्त्यजनकत्वाच्छशशृङ्गादिकल्पः, पन्थाः—सुखत्याद्युपायोपदर्शनमार्गो येषां ते एकान्तवादिनो व्यलीकपथास्तेषां नायकाः—तत्तद्दर्शनोपदेष्टारो व्यलीकपथनायकाः, तत्तद्दर्शनोपदिष्टपदार्थतत्त्वप्ररूपका अपि तथा, तैर्व्यलीकपथनायकैः; **हितपरिश्रमच्छद्मभिः** हिताय—पश्वादीनां स्वर्गादीष्टवस्तुप्रापणाय, परिश्रमः—यज्ञीयवधादिकोऽस्माकं प्रयत्नः, इति छद्म—माया येषां तादृशैः **निरागसि** अपराधरहिते, **सुखोन्मुखे** सुखं मे भवत्विति कामनया सुखोपायान्वेषणप्रवणे, **जगति** जगदन्तर्गतजडपदार्थस्य सुखोन्मुखत्वाभावाज्जगत्पदमत्र चेतनमात्रपरमिति जीवे, **यातनानिष्ठुरैः** पीडाजनने दयालवरहितैः, निष्करुणैः, अत एव यज्ञादावजादिजीवघातपरायणैः; **शठवादिभिः** शठाः—साधुजनद्वेषशालिनश्च—वादिनश्च—युक्तिहीनवचनलम्पटाश्च शठवादिनस्तैः; **वादिभिः** एकान्तवादिभिः, **चिरं** यावन्न जिनमतपरिज्ञातं तावत्कालम्, **अपाकृताः** कुयुक्तिभिर्निराकृताः स्म, **वयं** जैनाः, **अद्य** जिनमतसुदृढनिरूढश्रद्धाकाले, **अहो** आश्चर्यं, **त्वदाश्रयकृतादरास्तु** जिनाश्रयणकृतभक्तयः पुनः, यदेव जिनेनोक्तं तदेव सत्यमित्येवं जिनं प्रति बहुमानेन जिनैकसेवानिरताः, **स्थिताः** परानभिभवनीयत्वस्वरूपव्यवस्थिताः, परैरेकान्तवादिभिश्चालयितुमशक्या इत्यर्थः ॥ २ ॥

इति सांख्याचार्यवचनं तु यस्य पूर्णायुषो न कस्यचिद् रोगादे. सम्भवस्तस्यापि कारणान्तरजन्यदुःखाभावेऽपि जन्मादिजन्य दु.खं भवत्येवेत्येतदभिप्रायकम् । हे जिन ! एवंस्वरूपो भवव्यसनपञ्जर', **नः** अस्माकं, **यथा येन** प्रकारेण, **अयं** भवव्यसनपञ्जरः **अभवः** न विद्यते स्वाधिकरणक्षणध्वंसानधिकरणक्षणसम्बन्धरूपो भवः– उत्पादो यस्य सोऽभवः, प्रवाहतोऽनादित्वात् संसारस्य स्वाधिकरणक्षणध्वंसानधिकरणक्षण एव नास्तीति तत्सम्बन्धलक्षणभवोऽपि न विद्यते इति युज्यते– अभवः, **भवश्च** भवत्यस्मिन्निति भवश्च ससारो भवति, यतो जायन्त एवास्मिन् प्राणिन इति **गम्यते** ज्ञायते, **अन्यथा** जिनोक्तप्रकारव्यतिरिक्तप्रकारेण, **न** न ज्ञायते, एकान्तरूपस्य तत्प्रकारस्य व्यलीकत्वेन तद्रूपेण ससारस्यापि व्यलीकत्वादित्यर्थः ॥३॥

जिनोक्तप्रकारेणैवाभ्युदयादिक समीचीन, तत्र प्रतिवादिनो मूकीभवनमेव न्याय्यमन्यथाऽलीकतैव तत्रापीत्याशयेनाह—

जगत्यनुनयन् यथाभ्युदय-विक्रियावन्ति च
स्वतन्त्रगुणदोषसाम्यविषमाणि भोज्यान्यपि ।
क्रियाफलविचित्रता च नियता यथा भोगिनां
तथा त्वमिदमुक्तवानिह यथा परे शेरते ॥४॥

जगतीति—"जगति यथाऽनुनयन् भोज्यान्यपि अभ्युदय-विक्रियावन्ति स्वन्त्रगुण-दोषसाम्यविषमाणि च. भोगिना यथा च क्रियाफलविचित्रता नियता तथा त्वमिदमुक्तवान् , यथा इह परे शेरते" इत्यन्वयः । हे भगवन् ! **जगति** संसारे, **यथा** येन प्रकारेण, **अनुनयन्** भवतशिष्य-प्रशिष्यादीन् स्वोपदर्शितमार्गानुसारिणो विदधत्, **भोज्यान्यपि** स्वकृतकर्मफलात्मकभोज्यान्यपि, **अभ्युदय-विक्रियावन्ति** अभ्युदयः–स्वर्गादि धन–पुत्र–समृद्ध्यादि च. विक्रिया-नरकादि दारिद्र्यादि च' तदन्यतरवन्ति, विहितानुष्ठानेनाभ्युदयवन्ति निषिद्धाचरणेन विक्रियावन्ति, **च** पुनः, **स्वन्त्रगुण-दोषसाम्य-विषमाणि** स्वन्त्रौ–ईश्वरप्रेरणानपेक्षौ स्वाभाविकाविति यावत् , एतेन—

बौद्धसम्भवावपाकृत्येति यावत्, यं **मध्यमं** सर्वं वस्तु प्रतिक्षणमुत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मकं, सर्वेषां पदार्थाना पूर्वपर्यायात्मना विनाश उत्तरपर्यायात्मनोत्पादः पूर्वापरपर्यायानुगामिद्रव्यात्मना ध्रौव्यमित्येवस्वरूपम्, **निसर्गशिवं** निसर्गेण-स्वभावेन, शिव–कल्याणत्मकं, **मार्गं** मोक्षसुखप्राप्तिपदम्, एतत्स्पष्टाधिगतये–**उदयाय** आत्मस्वरूपाविर्भावनाय, **आत्थ** कथितवानसि, **स एवायम्** अनन्तरोपवर्णित-भवदुपदिष्ट एव मार्ग., **अभिधानरूक्षाशयात्** तुष्यतु दुर्जन इत्यपशब्दाकलि-ताभिप्रायात्, **दुरनुष्ठितः** किं करोमि ममैकान्ताभ्युपगमोऽनेनानेकान्तवादनिपुणेन सर्वथाऽपाकृत इति दु.खेनान्तर्गतेनानुष्ठितो–लोकयात्रानिर्वाहायासेवितो न तूदयायेति, **मधौ** वसन्तसमये, **दुर्गृहीतोद्धतः** दु.खेन–अतिपरिश्रमेण, गृहीतश्चासावुद्धतश्च आविर्भावितफणाडम्बरश्च दुर्गृहीतोद्धत, **महोरग**· महान् सर्पः, **इव दशति** स यथा दुर्गृहीतारं दशति तद्दष्टश्च पुरुषो- म्रियते तथा दुरभिधानाभिप्रायेणानुष्ठितो जिनोपदिष्टमध्यममार्गोऽपि दशतीव, दुरभिमानाभिप्रायेण तदनुष्ठानादनुष्ठाताऽकल्याण-भाजनं भवतीत्यर्थ. । **'दुर्गृहीतो यतः'** इति पाठे तु **यतः** यस्मात् कारणात्, **दुर्गृहीतः** मन्त्रसंदशनादिविधिमन्तरेण यथाकथञ्चिद् गृहीतः, शेष पूर्ववत् ॥५॥

अनेकविधबाह्यवञ्चनप्रकारकुशलेभ्य. परेभ्यो जिनस्य वैशिष्ट्यमुपदर्शयति—

जगद्धितमनोरथाः स्वयमनावृतप्रीतयः
कृतार्थनिवृत्तादराश्च विवृतोग्रदुःखे जने ।
गुणज्ञ ! परिमृग्यमाणलघवः स्वनीतेः परे
त्वमेव तु यथार्थवादशुचिरर्थविद्भिर्वृतः ॥६॥

जगद्धितमनोरथा इति–"जगद्धितमनोरथाः स्वयमनावृतप्रीतय· विवृतोग्रदुःखे जने कृतार्थनिवृत्तादराश्च स्वनीतेः परिमृग्यमाणलघवः परे, हे गुणज्ञ ! त्वमेव तु यथार्थवादशुचि अर्थविद्भिर्वृतः" इत्यन्वयः । **जगद्धितमनोरथाः** जगत जन्तुमात्रस्य, हित–कल्याणं जगद्धित जगद्धितस्य मनोरथ.- कामना येषां ते जगद्धितमनोरथा, जन्तुमात्रस्य कल्याण भवत्वेव कामयमाना इत्यर्थः, **स्वय-मनावृतप्रीतयः** स्वयं–स्वात्मनि, अनावृता–आवरणरहिता, प्रीति.–स्त्रीपुत्रधना-दिविषयक स्नेहो येषा ते स्वयमनावृतप्रीतयः, स्वात्मनि निरावृतस्त्रीपुत्र-धनादि-

जनानुमुखचाटवस्तरुणसत्कृतप्रातिभाः
प्रवृत्तिपरमार्थमेव परमार्थमाहुः परे ॥७॥

प्रवृत्त्यपनयक्षतमिति—"प्रवृत्त्यपनयक्षतमशान्तजन्मव्यथं जगद् विरामलघुलक्षणस्त्वं तद् अन्तःक्षणमकरोः जनानुमुखचाटवस्तरुणसत्कृतप्रातिभाः परे प्रवृत्तिपरमार्थमेव परमार्थमाहुः" इत्यन्वयः । **प्रवृत्त्यपनयक्षतं** प्रवृत्त्या—सांसारिकविविधविषयोपभोगानुगुणप्रवृत्त्या, अपनयः कुमार्गगमनादिलक्षणः—प्रवृत्त्यपनयः, तेन क्षतम्, अत एव **अशान्तजन्मव्यथं** न शान्ता—न निवृत्ता—अशान्ता, जन्मव्यथा—भूयोजन्मग्रहणपीडा यस्य तदशान्तजन्मव्यथ, **जगत्** जन्तुजातं, अस्तीति शेषः, हे वीर ! **विरामलघुलक्षण**. विरामः—सर्वकर्मतो विरमणमेव, लघु विशेषणान्तरराहित्याल्लघुभूत, लक्षणम्—अन्यतो व्यावर्तक चिह्न यस्य स विरामलघुलक्षणः त्वं जिनः, **तत्** निरुक्तस्वरूपमपि जगत्, **अन्तःक्षणम्** अन्तः—मध्ये, निवृत्तिप्रधानधर्मशासनप्रवर्तनकाले इत्यर्थः, क्षण.—परमानन्दपदप्राप्तिलक्षण उत्सवो यत्र तादृशम्, **अकरो** कृतवान्, **जनानुमुखचाटवः** जनानां लोकानाम्, अनुमुख—सम्मुख—जनानुमुख, जनानुमुखं चाटु मनोहरवचनं येषा ते जनानुमुखचाटवः स्वसमीपवर्तिजनहृदयङ्गमवचनवक्तार', **तरुणसत्कृतप्रातिभाः** तरुणै· युवजनैः सत्कृताः वहुमानपुरस्कृता —तरुणसत्कृताः, प्रातिभा —नवनवोन्मेषशालिनी बुद्धि प्रतिभा, तयोत्प्रोक्षिताः पदार्था· प्रातिभाः, तरुणसत्कृता प्रातिभा येषा ते तरुणसत्कृतप्रातिभा·, युवजनानुमोदितप्रतिभाशालिन· एतादृशा· सन्त., **परे** जिनव्यतिरिक्ताः—एकान्तवादिन', **प्रवृत्तिपरमार्थ** प्रवृत्तिरेव परम.—उत्कृष्टः, अर्थः—प्रयोजनं यत्र स प्रवृत्तिपरमार्थस्तं, **परमार्थं** तात्त्विकार्थम्, आहुः कथयन्ति, ते च प्रवृत्तिप्रधाना अन्यानपि कर्मणि प्रवर्तयन्त्येव येन तदुपदेशस्थिताना जनाना चिरकाल भवभ्रमणमेव भवति दूरे तेषा निर्वाणमित्याशय' ।७॥

नियति-स्वभाव—काल-पौरुष-कर्मणा पञ्चाना कार्यमात्रे कारणाना परस्परसहकारिणामपि सता क्वचित् कार्ये कस्यचित् प्राधान्यमाश्रित्य कारणत्वविविक्षया सकलनयमये जिनसमये नियतिवादादयः पञ्च वादास्तुल्यकक्षा विराजन्ते, एवमपि तथाविधसमयप्रणेतुर्भगवतो जिनस्य प्रतिपक्षवादोपदर्शितेन स्वान्यवादगतदोषेण न मालिन्यमित्यश्चर्यमस्माकमित्युपदर्शयति—

दोषः–अन्योऽन्यं वादेनोद्भावितो यो दोषः, तेन मलिन –जिनप्ररूपितेषु नियत्यादिवादेषु परस्परोद्भाविता इमे दोषा इत्येवमेकान्तवाद्याम्रेडितापवादजनितमालिन्यवान् नैव भवसि, विभिन्ननयाकलितापेक्षाभेदेन पञ्चानामपि वादाना निर्दुष्टत्वात्, इति अहो विस्मयः आश्चर्यमस्माकं मन्दमतीनामित्यर्थः । नियत्यादिवादाश्च शास्त्रवार्तासमुच्चये सम्यक् प्ररूपिता विशेषजिज्ञासुभिस्तत एवावधार्याः ॥ ८ ॥

निमीलितलोचनस्य जगत उन्मीलितलोचनत्वं त्वयैव सम्पादितमित्याह–

परस्परविलक्षणाश्च न च नाम रूपादयः
क्रियापि च न तानतीत्य न च ते क्रियैकान्ततः ।
निरोधगतयस्त एव न च विक्रिया निश्चया
निमीलितविलोचनं जगदिदं त्वयोन्मीलितम् ॥ ९ ॥

परस्परविलक्षणाश्चेति । "नामरूपादयः परस्परविलक्षणाश्च न, तानतीत्य क्रियाऽपि न च, ते क्रियैकान्ततो न च, त एव न च निरोधगतयः, विक्रिया निश्चया न च निरोधतयः, निमीलितविलोचनमिद जगत् त्वयोन्मीलितम्" इत्यन्वयः । **नामरूपादयः** नामाऽऽकृति–द्रव्य-भावाः, **परस्परविलक्षणाः** अन्योऽन्यं सर्वथा वैलक्षण्यभाजः, **न च**–नैव, नाम्नोऽपि घटादिस्वरूपस्य घकारोत्तराकारोत्तरटकारोत्तराऽत्वरूपानुपूर्वीलक्षणाकृतिमत्त्वात्, उत्तरघकाराद्यक्षरपर्यायापेक्षया द्रव्यरूपत्वात्, वर्तमानघटस्वरूपभावरूपत्वात्; कम्बुग्रीवादिसंस्थानलक्षणाकृतेरपीयमाकृतिरिति नामकरणेन नामत्वात् उत्तरपर्यायकारणत्वेन द्रव्यरूपत्वात्, वर्तमानाकृतिस्वरूपत्वेन भावत्वात्, घटादिकारणमृद्‌द्रव्यस्यापि मृदिति नामकरणेन नामत्वात्, पिण्डरूपेण मृदोऽवस्थानलक्षणाकृतित्वात्, वर्तमानमृत्स्वरूपतया भावत्वात्; घटादिलक्षणभावस्यैव घटोऽयमिति नाम क्रियत इति नामत्वात्, पृथुबुध्नोदराकृतिमत्त्वात्, उत्तरपर्यायकारणत्वेन द्रव्यत्वात्, कथञ्चिदविष्वग्भावलक्षणसम्बन्धस्य सम्बन्धमात्रव्यापकत्वेन नामाकृत्यादीना यत्किञ्चित्सम्बन्धसद्भावे तादात्म्यस्यावश्यम्भावादिति नामरूपादीना सर्वथा वैलक्षण्यं नास्तीत्यर्थः । **तान्** नामरूपादीन्, **अतीत्य** अतिक्रम्य, नामरूपादिक विहायेत्यर्थ, **क्रियापि** आगमविहितानुष्ठानादिकमपि, **न च** नैव, भगवन्नामरूपादिक परित्यज्य तदर्चनस्तुति-

च प्रतिस्वं, तव इदमपरं वचः, अनलसैर्मनस्सु निखातम्" इत्यन्वयः । **कश्चिद्पि** कोऽपि पदार्थः, **न जायते** सर्वथा स्वाधिकरणक्षणध्वंसानधिकरणक्षणसम्बन्धात्मकोत्पादवान्न भवति, पूर्वं सर्वथाऽसत उत्पादोपगमे शशशृङ्गादेरप्युत्पाद. प्रसज्येतेत्यतः पूर्वं कथञ्चित् सत एवोत्पादोऽभ्युपेयः, एवं च तस्य सर्वेऽपि क्षणाः स्वाधिकरणस्वपूर्ववर्तिक्षणध्वंसाधिकरणा एवेति स्वाधिकरणक्षणध्वसानधिकरणक्षणाप्रसिद्धया तत्सम्बन्धरूपोत्पादस्याप्यप्रसिद्धेः, एतेनासत्कार्यवादः प्रतिक्षिप्तः । सर्वथापरिणामवाद पूर्वस्वभावं सर्वथा परित्यज्योत्तरस्वभावरूपेण परिणमत इत्येवंस्वरूपं प्रतिक्षिपति–**परत्वं** पूर्वस्वभावात्यन्तभिन्नस्वभावत्वम्, **आपद्यते** आप्नोति, **न च** नैव, पूर्वस्वभावविनाशे स्वभावस्वभाववतोरभेदात् स्वभाववतोऽपि विनाशेनासतस्तस्य परस्वभावावाप्त्यसम्भवात् ; तर्हि पदार्था. कीदृशाः ? **सर्वाः प्रजाः** सर्वाणि वस्तूनि, **प्रतिक्षणनिरोधजन्मनियताश्च** प्रतिक्षणं निरोधः–विनाशः, जन्म–उत्पादश्चेति–प्रतिक्षणनिरोधजन्मनी, प्रतिक्षण–निरोध-जन्मभ्यां नियताः–व्याप्ताः–प्रतिक्षणनिरोधजन्मनियता', प्रतिक्षण. केनचिद्रूपेण नश्यन्ति केनचिद्रूपेणोत्पद्यन्ते, निरन्वयोत्पादविनाशयोरसम्भवात, केनचिद्रूपेण तिष्ठन्ति चेत्यर्थः, एतेन सदसत्कार्यवादः केनचिद्रूपेणावस्थित एव पूर्वरूप परित्यज्य रूपान्तरेण परिणमत इत्येव कथञ्चित्परिणामवादश्च जैनानामभ्युपगमपथं नीत इति । उत्पत्ति–विनाशयोः कथञ्चिदभेदोऽपीत्याह–**य एव च** य एव पुनः, **समुद्भवः** उत्पाद., **स** उत्पादः, **विलयः** विनाशः, **तौ च** उत्पाद विनाशौ च, **प्रतिस्वं** प्रतिव्यक्ति, हे जिन !, तव इद अनन्तरोपवर्णितम्, **अपरं** पूर्वोक्तवचनभिन्नं **वचः** वचनम् , **अनलसैः** आलस्यरहितैः, यथासमय स्वाध्यायव्यसनपरायणैः, **मनस्सु** अन्तःकरणेषु, **निखातं** तथाऽवस्थापितं यथा बहिर्न गच्छति, भूमौ निखात रत्नादिक यथा तत्रैवावतिष्ठते, कार्यकाले चावाप्यते तथेदमपीत्यर्थः ॥१०॥

कार्यकारणभावेन भवहेतु-भोक्त्रादीनां विभिन्नतया सत्त्वमनासादयतां गुम्फनमन्याकर्तृक जिनेनैव कृतम्, अन्योपदिष्टभवहेत्वादिस्वरूपस्याव्यवस्थितत्वाज्जिनोपदिष्टभवहेत्वादिस्वरूपस्यैव स्याद्वादमर्यादया व्यवस्थितत्वादित्याह—

त्वं परमार्थतत्त्वस्पृहयालूना परमः सुन्दरः त्वदुपदिष्टप्रकारेणैवात्मनः परमात्मतेत्याह—

स्वभावनियतस्त्वया जिन ! न कश्चिदात्मोदित-
स्त्वमेव च परं ललाम परमार्थतत्त्वार्थिनाम् ।
असम्भवमनाशमेकममितक्षयस्थानिनं
यथैनमवदस्तथैव परमात्मताऽस्यात्मनः ॥१२॥

स्वभावनियत इति । "हे जिन ! कश्चिदात्मा स्वभावनियतस्त्वया नोदितः, च–पुनः परमार्थतत्त्वार्थिना त्वमेव परं ललाम, असम्भवम् अनाशम् एकम् अमितक्षयस्थानिनम् एनं यथाऽवदः तथैवाऽस्याऽऽत्मनः परमात्मता" इत्यन्वयः। **कश्चिदात्मा** कोऽप्यात्मा, **स्वभावनियतः** अयमात्मा किञ्चिज्ज्ञस्वभावः, अयमात्मा सर्वज्ञस्वभावः अयमात्मा परमात्मस्वभाव इत्येव विभिन्नस्वभावे नियतः–अवस्थितः **त्वया** जिनेन, **न** नैव, **उदितः** कथितः, **च** पुनः, **परमार्थतत्त्वार्थिनां** परमश्चासावर्थश्च परमार्थः, परमार्थ एव तत्त्वं–परमार्थतत्त्वं, परमार्थतत्त्वमर्थयन्त इति परमार्थतत्त्वार्थिनस्तेषां परमार्थतत्त्वार्थिनां, परमार्थतत्त्वेच्छूनामित्यर्थः, **त्वमेव** जिन एव, **परं** उत्कृष्टं, **ललाम** भूषणम्, अतिसुन्दर इत्यर्थः, **असंभवं** न विद्यते संभवः–उत्पादो यस्य सोऽसंभवस्तम्, उत्पादरहितम्, **एकम्** अद्वितीयम् **अमितक्षयस्थानिनं** अमित–एतावदिदमिति मातुमशक्य, क्षय–गृहम्, अमितक्षयमेव स्थानम्–अमितक्षयस्थानं, तदस्यास्तीति अमितक्षयस्थानी, तं अमितक्षयस्थानिनम्; **एनं** आत्मानं, **यथा** येनोक्तप्रकारेण, **अवदः** हे जिन ! त्वं गदितवान्, **तथैव** तेनैव प्रकारेण, **अस्य** स्वसंविदितप्रत्यक्षसिद्धस्य, **आत्मनः** जीवस्य, **परमात्मता** परमात्मस्वरूपता, जीव एवासम्भवत्वादिधर्मवत्त्वात् परमात्मा, न तु अन्यैरात्मानं जीवेश्वरभेदेन द्विधा विभज्य तत्रेश्वरस्य परमात्मत्वं प्रतिपादितं युक्तमित्यर्थः ॥१२॥

हे जिन ! तव वचनं सूक्ष्मबुद्धिविभवैकगम्यं, न साधारणजनवेद्यमित्युपदर्शयति—

ऋतं वितथमेव गुप्तिरथ वा तपः किल्बिषं
विमुक्तिमपि बन्धमात्थ न च तत् तथा नान्यथा ॥१४॥

क्षमैवेति। 'पुरुषं रुषन् क्षमैव [इति], च [पुनः] अभ्युन्नतिः विजातिर्न [इति], अतिमार्दवं मानं न न [इति], आर्जवं निकृतिः न न [इति], ऋतं वितथमेव [इति], गुप्तिः अथवा तपः किल्बिषम् [इति], विमुक्तिमपि बन्धं [च], आत्थ, [यत्] न अन्यथा तत् न तथा" इत्यन्वयः।

पुरुषं रुषन् जीवं प्रति क्रोधं कुर्वन् **क्षमैव** क्षमागुण एव, शुभाशयेन शिष्यादौ क्रियमाणः कोपः फलतः क्षमागुण एव, क्षमावानिति पाठस्य योग्यत्वेऽपि पर्यायार्थिकनयप्राधान्यविवक्षया क्षमैव इति निर्देशः, **इति त्वमात्थ**. एवं हे भगवन्! भवान् कथयति, वाक्यार्थगतकर्मत्वप्रतिपादनाय इतिशब्दोऽध्याहार्यः, अत एव—

'जानामि सीता जनकप्रसूता, जनामि रामो मधुसूदनश्च।
जानामि मृत्युर्मम तस्य हस्ते, तथापि सीता न परित्यजामि ॥१॥"

इत्यादौ कर्मत्ववाचकद्वितीयाविभक्तिमन्तरेणैव वाक्यार्थस्य कर्मत्वमुररीकृतम्, अभ्याहृतेन इतिशब्देनाभिहितं च, एवमग्रेऽपि विज्ञेयम्। "**पुरुषं रुषंश्च**" इति स्थाने '**परुषं रुषञ्च**" इति पाठो ज्ञेयः, **परुषं** कठोरं यथा स्यात् तथा, **रुषं** रुष्शब्दस्य द्वितीयैकवचनं, कोपक्रियामिति तदर्थः. तथा च कठोरं यथा स्यात् तथा क्रियमाणं कोपम्, **क्षमैव** शुभाशयेन क्रियमाणतया क्षमागुण एव इति भवान् कथयतीति फलितार्थः, क्षमाशब्दश्चाव्ययेऽपि पठितोऽस्ति, तस्येह ग्रहणे द्वितीयायामपि 'क्षमा' इति स्वरूपान्न इतिशब्दस्याध्याहारापेक्षा, क्षमामेवात्थ इति तदर्थः, अस्मिन् पक्षे न पर्यायनयप्राधान्याश्रयणापेक्षा, न वा शतृप्रत्ययोत्पादनविडम्बना, तथाहि—"रुष हिंसायाम्" "रुषच् रोषे" "रुषण् रोषे" इति त्रयाणामपि धातूनां शतृप्रत्यये क्रमशो 'रोषन् रुष्यन् रोषयन्' इति रूपाणि भवन्ति, 'रुषन्' इति न कस्यापि एतदर्थं तुदादिपाठकल्पना कर्तव्या भवति, साऽपि नेदानीं कर्तव्येत्यर्थः। **अभ्युन्नतिः** अभितः उत्कर्षः, **विजातिः** विकृतिः, **न** नैव, इति त्वमात्थ, अयं भावः—अभ्युन्नतिः किलात्मनः कैवल्यस्वरूपावाप्तिः, सा सहजैव, केवलमावरणापगमादाविर्भूतेति न विकृतिरिति। **अतिमार्दवं**

किञ्चिन्नाभ्येति, न च गतिं विना भवोऽस्ति, हे अभव ! ते वचो निश्चितम्" इत्यन्वयः । **कश्चन** कोऽपि पुरुषः, **न** नैव, **करोति** किञ्चिदपि कार्यं करोति, तस्मान्नास्ति कर्ता; **नापि** नैव, **केनचित्** केनापि पुरुषेण, **परिभुज्यते** किञ्चिदपि भोगकर्म भवति, तस्मान्नास्ति भोक्ता भोग्याभावाद् भोक्तुरभावः, **वेद्यमपि** ज्ञेयमपि, **न** नास्ति, वेद्याभावाद् वेदकस्याप्यभाव इति नास्ति ज्ञाता; **न च** नैव, **किञ्चित्** किमपि वस्तु, **अस्ति**–सत्त्वाश्रयः, तथा चाश्रयाभावात् सत्तापि नास्ति; **क्रियाभूतयः** पचन-पठनादिलक्षणक्रियोत्पत्त्यादयः, **न** नैव, तथा च पाचक-पाठकाध्यापकादीनामप्यभावः, **भवन्** पूर्वकृतकर्मबलाज्जन्म गृह्णन्, **भवान्तरं** परभव, **न व्रजति** न गच्छति, भवन्नित्यस्य स्थाने भवादिति पाठो युक्तः, प्रेत्यभावो नास्तीत्यर्थः; **वा** अथवा, **कश्चित्** कोऽपि, **नाभ्येति** भवान्तराद् भवान्तर नागच्छति, मरणानन्तर जन्म जन्मानन्तरं मरणमित्येव जन्ममरणानुगमनस्वरूप ससरण संसारो नास्तीत्यर्थः; **गतिं** मनुज-तिर्यक्-सुर नरक-चतुष्टयगतिं विना, **भवः** ससारः, **न च** नैव, **अस्ति** विद्यते; भवः–ससारो यस्य नास्ति सोऽभवस्तस्य सबोधने–हे अभव ! **ते** तव, **वचः** वचन, **निश्चितं** निश्चयनयसमुत्थम्, कर्तृ-भोक्त्रादेर्व्यावहारिकत्वात, निश्चयनये सर्वस्य स्वात्मन्येव प्रतिष्ठितत्वान्नान्यस्यान्येन सम्बन्ध, कर्तृत्व-भोक्तृत्वादिधर्माश्च नान्यसम्बन्धमन्तरेण सम्भवन्तीत्याशयः ॥१५॥

यदा परवादिनो निश्चयनयं परपीडनप्रवणतया योजयति तदा हे जिन ! भवता प्रशमहेतुतया स योजित इत्युपदर्शयति—

वियोजयति चासुभिर्न च वधेन संयुज्यते
शिवं च न परोपमर्दपुरुषस्मृतेर्विद्यते ।
वधाय नयमभ्युपैति च परान्न निघ्नन्नपि
त्वयाऽयमतिदुर्गमः प्रशमहेतुरुद्योतितः ॥१६॥

वियोजयतीति । "असुभिर्वियोजयति च, वधेन सयुज्यते न च, परोपमर्दपुरुषस्मृते शिव न च विद्यते, परान् निघ्नन्नपि च वधाय नयं नाभ्यु-

परप्रियहितैषिणश्च बहुयातनापाणयः
समन्तशिवसौष्ठवं तव न ये वचः संनताः ॥१७॥

अपुण्यपथभीरव इति । "हे *वचनसत्य* ! ये *अपुण्यपथभीरवः सत्या-*दराः सत्यवचनार्थमूढाः परप्रियहितैषिणश्च बहुयातनापाणयो जनाः, तव समन्तशिवसौष्ठवं वचो न सनताः, अशिवमेव पतन्ति" इति सम्बन्धः । हे **वचनसत्य !** वचनं सत्य यस्य स वचनसत्यः. यद्वा वचने—प्रतिपादने, सत्यः—यथार्थः, सत्यवक्तेत्यर्थः, तत्सम्बोधने—वचनसत्य !, **ये** अनिर्दिष्टनामनः केऽपि, **सत्यादराः** सत्ये आदर.—बहुमानो येषा ते सत्यादराः; **सत्यवचनार्थमूढाः** सत्यवचनस्यार्थे मूढाः—ज्ञानविकलाः, अस्य सत्यवचनस्यायमर्थः सत्य इत्येवंनिर्णयात्मकज्ञानरहिताः; **च** पुनः, **परप्रियहितैषिणः** परस्य यत् प्रिय—मनोऽनुकूल, हितम्—आयत्यामानन्ददायक—परप्रियहित, तदैषिणः-तच्चिन्तकाः, केनोपायेन परस्य प्रियं हित स्यादित्यनवरतं तदुपायान्वेषणव्यग्राः; **बहुयातनापाणय** वहवो यातनाः—परभयोत्पादका खड्गादयः पाणौ येषा ते बहुयातनापाणय., एवंविधा **जनाः** लोकाः, **तव** जिनस्य, **समन्तशिवसौष्ठवं** अत्यन्तकल्याणैकमनोहर **वचः** वचनम्, **संनताः** सम्यक् प्रणताः, **न** नैव; वस्तुगत्या अपुण्यपथभीरवो यदि किमिति हिंसादिप्रधानयज्ञादिक्रियामनुतिष्ठन्ति ?, यदि च सत्यादरास्तर्हि वचनसत्यस्य जिनस्य सत्ये वचस्येवादर. समुचितस्तेषा, जिनवचनातिरिक्तवचनादराच्च न वस्तुत. सत्यादराः, जिनवचनातिरिक्तवचनार्थाभिज्ञाश्च सत्यवचनार्थमूढा एव, अन्यवचनार्थस्य सत्यवचनार्थत्वाभावात्, यदि च वस्तुगत्या परप्रियहितैषिण किमिति परक्षोभकरं खड्गादिकं पाणौ धारयन्ति ?, खड्गादिपाणयश्च न वस्तुतः परप्रियहितैषिणः, कल्याणैकनिकेतनजिनवचनप्रणामविमुखानामकल्याणैकनिकेतननरकादिगतिनिपातो युक्त एवेत्याशय ॥१७॥

हे जिन ! गदपराहतजनैर्गदवारणाय भवदीयवचनामृतं पीयते इत्याह—

य एव रतिहेतवः समफलास्त एवार्थतो
न च प्रशमहेतुरेव मतिविभ्रमोत्पादकः ।

यशःसुखपिपासितैरयमसावनर्थोत्तरैः

परैरपसदः कुतोऽपि कथमप्यपाकृष्यते ? ॥१९॥

ममेति । "ममेति अहमिति चैषोऽभिमानदाहज्वरो यावत् तावत् कृतान्तमुखमेवेति प्रशान्त्युन्नयो न, यशःसुखपिपासितैरनर्थोत्तरैः परैरयमसावपसदः, कुतोऽपि कथमप्यपाकृष्यते ?" इत्यन्वयः । **ममेति**–मम कलत्रं, मम बान्धवः, मम पुत्रः, मम माता, मम पिता, मम मातामहः, मम मातुल इत्याद्याकार इत्यर्थः, **अहमिति**–अहं ब्राह्मणोऽहं, श्रोत्रियोऽहं, धनिकोऽहं, ग्रामाधिपतिरहं राजेत्याकार इत्यर्थः, **एषः** प्रत्यक्षात्मकः, **अभिमानदाहज्वरः** अभिमान एव दाहज्वरः–शरीरसंतापकारी ज्वरोऽभिमानदाहज्वरः, **यावत्** यावत्कालं वर्तते, **तावत्** तावत्कालं, **कृतान्तमुखमेवेति**–कृतान्तस्य–मृत्योः, मुखमेव–मुख-प्रविष्टत्वमेवेत्येतस्मात् कारणात्, **प्रशान्त्युन्नयः** प्रकर्षेण शान्तेरुन्नतिः, **न** नैव; **यशःसुखपिपासितैः** यशश्च सुखं च यशःसुखे तयोः पिपासा–यशो मे स्यात्, सुखं च मे स्यादित्याकारिकेच्छा, तदाश्रयैः, यशःसुखकामुकैरित्यर्थः, **अनर्थोत्तरैः** अनर्थमनिष्टमुत्तरकाले येषां तेऽनर्थोत्तरास्तैः, उत्तरकालेऽवश्यम-निष्टप्राप्तिमद्भिः, **परैः** जैनभिन्नैर्जैनै रागद्वेषाक्रान्तैः, **अयमसावपसदः** देव-दत्तोऽयं मम शत्रुरत्यन्तापकारकारी, असौ मम छिद्रान्वेषी इत्यादिस्वरूप आभासः, यद्वा **अपसदः** अधमः, **अयमसौ** सोऽयमभिमानज्वरः, **कुतोऽपि** कस्मा-दपि देशकालादेः, **कथमपि** केनापि प्रकारेण, **अपाकृष्यते** ? दूरीक्रियते ? काक्वा न कुतोऽपि न कथमप्यपाकर्तुं शक्यत इत्यर्थः ॥१९॥

हे जिन ! यथा त्वमुपदिशसि तथैव हितपरीक्षकैरुपेयते प्रकारान्तरस्य हितत्वाभावादित्याह–

न दुःख-सुखकल्पनामलिनमानसः सिद्ध्यति

न चागमसदादरो न च पदार्थभक्तीश्वरः ।

न शून्यघटितस्मृतिर्न शयनोदरस्थो न वा

यथातथ न ततः परं हितपरीक्षकैर्मन्यते ॥२०॥

उत्कृष्टास्तिकत्वादिधर्मवत्त्वेन सर्वोत्कृष्टतया भगवन्तं स्तौति—

त्वमेव परमास्तिकः परमशून्यवादी भवान्
त्वमुज्ज्वलविनिर्णयोऽप्यवचनीयवादः पुनः ।
परस्परविरुद्धतत्त्वसमयश्च सुश्लिष्टवाक्
त्वमेव भगवन्नकम्प्यसुनयो यथा कस्तथा ॥२१॥

त्वमेवेति । अन्वयो यथाश्रुतानुपात्येव, हे भगवन् ! **त्वमेव** विशेष्यसङ्गतैवकारस्यान्ययोगव्यवच्छेदकार्थकत्वाज्जिनभिन्ने परमास्तिकत्वं व्यवच्छिनत्ति, **परमास्तिकः** अस्ति स्वर्गः, अस्ति नरकमित्येव परलोकविशेष्यकास्तित्वप्रकारकनिर्णयवान् आस्तिकः, स च जैना-ऽक्षपाद-कणाद-साङ्ख्य-मीमांसक-बौद्ध-भेदेन षोढा प्रसिद्धः, सांख्यस्य सेश्वराऽनीश्वरभेदेन द्विविधतया तत्रैवेश्वराभ्युपगन्तृपातञ्जलेश्वरानभ्युपगन्तृकापिलयोरन्तर्भाव, मीमांसाया· पूर्वोत्तरमीमांसाभेदेन द्विविधत्वेन तत्र कर्मकाण्डप्रधानपूर्वमीमांसामननप्रवणस्य जैमिनिमुन्यनुयायिनो मीमांसकस्य ज्ञानकाण्डप्रधानोत्तरमीमांसामननप्रवणस्य व्यासानुयायिनो वेदान्तिनश्च मीमांसकान्तर्भावः, एवं षण्णामास्तिकाना मध्ये धर्मास्तिकायादीनामप्यस्तितास्वीकारेणोत्कृष्टतमत्वात् परमास्तिकस्त्वमेव, त्वदन्यावृत्तिपरमास्तिकत्ववान् त्वमित्यर्थः ; **परमशून्यवादी** ब्रह्मातिरिक्तं नास्तीत्येवं ब्रह्मातिरिक्तस्य शून्यत्वम्—अभावं ब्रुवन् ब्रह्माद्वैतवादी भवति शून्यवादी, सौत्रान्तिक-वैभाषिक-योगाचार-माध्यमिक-भेदेन चतुर्विधेषु बौद्धेषु बाह्यमाभ्यन्तरं च किमपि वस्तु युक्त्या नोपपद्यत इति नास्तीत्येव सर्वं शून्यं ब्रुवन् माध्यमिकः शून्यवादी, सर्वं वस्तु स्वद्रव्यादिरूपेण सदपि परद्रव्यादिरूपेणासदेवेत्येवमसत्त्वलक्षणशून्यत्वमेव सर्वस्य वस्तुनोऽभिदधत् जिनोऽपि शून्यवादी, तेषु भवान् जिन एव परमशून्यवादी, **त्वं** जिनः, **उज्ज्वलविनिर्णयोऽपि** उज्ज्वलः—अत्यन्तप्रकाशमानो विशेषेण निर्णयो यस्य स उज्ज्वलविनिर्णयः, एवंस्वरूपोऽपि, **पुनः** तथा, **अवचनीयवादः** वचनीयः—गर्हितो न भवतीत्यवचनीयोऽनिन्दित·, अथवा अवचनीय·—गुणातिरेकतो वर्णयितुमशक्य·, यद्वा 'स्यादवक्तव्य एव' इति भङ्गाकलित· वादः—राद्धान्तो यस्य सोऽवचनीयवादः, अनिन्दितपरमोच्चस्याद्वादराद्धान्तः, त्वमेव, **च** पुन, **परस्परविरुद्ध-**

अयमेव नातोऽन्यथेति नास्ति, शिष्यादिवुद्धिवैशद्यार्थं कश्चिद् गुरुभूतोऽपि निरूपणप्रकार आदृतो भवति, ग्रन्थगौरवपरिहारार्थं च कुत्रचिल्लघुभूतप्रकार एवोपदर्श्यते, मन्दमतिप्रबोधनाय कुत्रचिल्लक्षणस्याव्याप्त्यादिदोषापनयनमपि क्रियते इत्येवं दिशां नियमाभाव एव, **एषा** अनन्तरोपवर्णिता, **स्थितिः** लक्ष्यलक्षणादिव्यवस्था, **हितोचिता** स्वस्वसमीहितानुसारिणी, **न च** नैव, लक्ष्यैकचक्षुषो हि शास्त्रकारा लक्ष्यानुरोध्येव लक्षण प्रणयन्ति, न तु हितानुसारीत्यभिसन्धिः। यद्वा **दिशां** पूर्वादिकाष्ठानां, **नियमः** इयमेव प्राची, इयमेव प्रतीची, इयं प्रतीच्येव इत्यादिनियमः, **न** नैव, एकापेक्षया प्राच्यपि परापेक्षया प्रतीची भवतीत्यर्थः। हे भगवन्! **त्वदीयं** जिनोदितं, **शासनमिव** श्रुतमिव, त्वदीयं शासनं यथा सुनयनिष्प्रकम्पं तथा लक्ष्यलक्षणादिपदार्था, **सुनयनिष्प्रकम्पाः** विषय-विषयिणोरभेदोपचारात् सुनयाश्च ते निष्प्रकम्पा. सुनयनिष्प्रकम्पा, सुनयविषयत्वादेव बाधादिलक्षणकम्परहिताः, अथवा सुनयो निष्प्रकम्पो येषु ते सुनयनिष्प्रकम्पाः अबाधितसुनयविषया इत्यर्थ., **स्थिताः** व्यवस्थिता ॥२२॥

जिनस्य राग द्वेषमलाकलुषितराद्धान्तनिकषोपले सर्वाऽपि परीक्षा परीक्ष्यतत्त्वनिर्णये समर्थेत्येतद् व्ययचयविषयपरीक्षोपवर्णनेन समर्थयति—

व्ययोऽपि पुनरुद्भवे भवति कर्मणां कारणं
चयोऽपि च परं ललाम भवनिर्जराबोधने।
करोति मलमर्जयन्नपि च निष्कृतिं कर्मणां
न वा क्व तव तीर्णसङ्गनिकषे परीक्षा क्षमा ॥२३॥

व्ययोऽपीति। "कर्मणा पुनरुद्भवे कारणं व्ययोऽपि भवति, भवनिर्जराबोधने चयोऽपि च पर ललाम, च-पुन मलमर्जयन्नपि कर्मणा निष्कृतिं करोति, हे जिन! तव तीर्णसङ्गनिकषे परीक्षा क्व वा न क्षमा" इत्यन्वय। **कर्मणां** ज्ञानावरणीयादिकर्मणा, **पुनरुद्भवे** पुनरुत्पत्तौ, आत्मप्रदेशैः समं कर्मपुद्गलाना क्षीरनीरन्यायेन सम्बधने, **कारणं** निमित्त, **व्ययोऽपि** उपभोगेन पूर्वबद्धकर्मणा विनाशोऽपि जीवप्रदेशेभ्यो पृथग्भवनलक्षणः भवति, वैशेषिकमते च "कर्म कर्मसाध्य न विद्यते" इति कर्मण कर्मप्रतिबन्धकत्वेन तद्ध्वंसस्य प्रतिबन्धका-

तिर्यगादिदेशगमनासम्भवात्, **मरणात्** शरीरप्राणादिवियोगात्, **अपेत्यापि** अन्यदेशं गत्वापि, **न च** नैव, व्रजति, गन्तव्य देशं प्राणवियोगानन्तरमेव जीवो गच्छति न तु प्राणवियोगानन्तर कश्चित् कालमन्यत्र स्थित्वा, ततो गमनस्यासम्भवात्, पूर्वापरभवयोरानन्तर्यस्यैव कर्मकृतत्वात्, **सर्वथैव** सर्वप्रकारेणैव, **अमृतो** मरणरहितो मुक्तो वा, न च व्रजति, पूर्वशरीरप्राणवियोगस्योत्तरशरीरप्राणाद्यसंयोगं प्रति कारणत्वेन मरणाभावे उत्तरशरीरपरिग्रहार्थ गमनासम्भवात्, मुक्तस्य च तिर्यगादिदेशगमनकारणकर्माभावेन यद्वा परलोकगमनकारणकर्माभावेन तथागमनासम्भवात्; **इन्द्रियगणं** द्रव्येन्द्रिय–भावेन्द्रियलक्षणद्विविधमिन्द्रिय, **विहाय** परित्यज्य न च व्रजति; द्रव्येन्द्रियत्यागेऽपि उपयोगलक्षणभावेन्द्रियाभावे उपयोगात्मकजीवस्यैवाभावप्रसक्त्या तत्परित्यागेन गमनासम्भवात्; **तनुं** शरीरं, **विहाय** परित्यज्य, न च व्रजति, औदारिकादिशरीरत्यागेऽपि आससार कार्मणशरीरसम्बन्धस्यावश्यम्भावेन तत्परित्यागे ऊर्ध्वगमनस्वभावस्य जीवस्य लोकान्तरव्यवस्थितमुक्तिशिलागमनावश्यम्भावेन परलोकगमनासम्भवात्; **अन्यथैव** जिनोदितगमनप्रकारव्यतिरिक्तैकान्तवाद्युपदर्शितप्रकारेणैव, **न च** नैव, व्रजति; तादृशप्रकारस्य समयाम्बुधावपाकृतत्वात्; हे जिन ! तव, **निरञ्जनं** दोषाञ्जनविमुक्तं मतं कर्तृ, **भव्यधीरं** मुक्तिगमनयोग्यसूक्ष्मशेमुषीशालिनं, **जनं** प्राणिनं, **विशति** तदन्तःप्रविष्ट भवति, भव्यधीरजन एव निरुक्तजिनमत सम्यगवबोद्धुमीश इत्यर्थः ॥२४॥

जिनेन्द्रोपदिष्टशासनस्य बुधैराश्रयणे निमित्तमुपदर्शयति—

चराचरविशेषितं जगदनेकदुःखान्तिक-
मनादिभवहेतुगूढदृढशृङ्खलाबन्धनम् ।
उदाहृतमिदं जिनेन्द्र ! सविपर्ययं यत् त्वया
ह्यनेन भवशासनं तव स्मृता बुधाः शासनम् ॥२५॥

चराचरविशेषितमिति । "हे जिनेन्द्र ! चराचरविशेषितम् अनेकदुःखान्तिकम्, अनादिभवहेतुगूढदृढशृङ्खलाबन्धनम् इदं जगत् सविपर्ययं यत्

यत्किञ्चिद्वस्तुनः, **क्रिया** कर्म, न **भवति** जायते, एतेन न वस्तुत्वव्यापिका नापि निराश्रिता क्रियेति नापि निर्हेतुकेति प्रतिपादितम्, **कस्यचिदिति** षष्ठीसम्बन्धप्रतिपादिका, सम्बन्धश्च सम्बन्धिनोर्भेदे सत्येव भवति, अभेदे घटस्य घट इति सम्बन्धाप्रतीतेः, यश्च यस्माद् भिन्नः स तमतिक्रम्यापि, यथा पटो घटाद् भिन्नो घटमतिक्रम्यापि वर्त्तते, तथा च क्रिया यदि आश्रयाद् भिन्नैव तर्हि आश्रयं विहायाऽपि स्यात्, न चाश्रयं विहाय क्रिया व्यवतिष्ठत इत्यतस्ततोऽभिन्नाऽपीत्याह- **न च विनिष्पतत्याश्रयात्** आश्रयात् आधारात्, न च नैव, विनिष्पतति- अन्यत्र गच्छति, गतिमत्स्वभावस्यैव वस्तुनो गमनं भवति नागतिमत्स्वभावस्येत्याह- **स्वयं च गतिमान् व्रजति** स्वमेव गतिक्रियावान् गच्छति, यदि च गतिक्रियातद्वतोरभेदो न स्यात् तर्हि स्वयं गतिमान्न भवेदतस्तयोरभेद उपेयः, यदि च गति-तद्वतोः सर्वथैवाभेदस्तर्हि स्वकारणेभ्य उत्पद्यमानो गतिमान् गत्या सहैवोत्पद्येत, न चैवं किन्तु पूर्वं स्वकारणेभ्यो गतिविकल एवोत्पद्यते, गतिहेतुमपेक्ष्य च तत्र गतिरुत्पद्यत इत्यतस्तयोर्भेदोऽपीत्याह- **अथ च** स्वयं गतिमत्त्वेऽपि च, **हेतुं** गत्युत्पत्तौ कारणम्, **आकाङ्क्षते** अपेक्षते, इत्थं क्रिया-क्रियावतोरर्थतः कथञ्चिद्भेदाभेदौ समर्थ्य गुण-गुणिनोस्तौ समर्थयति- **गुणोऽपि** यथा स्वाश्रयाश्रिता क्रिया तथा गुणः, **गुणवच्छ्रितः** गुणवदाश्रितः, आश्रयाश्रयिभावस्य भेदनियतत्वाद् गुण-तद्वतोर्भेद एतावता सिद्ध्यति, संयुक्तयोर्भिन्नयोरङ्गुल्योरन्तरं समस्ति, न च गुण-गुणिनोर्भिन्नयोरपि सतोरन्तरं समस्तीत्यतस्तयोरभेदोऽपीत्याह- **तदन्तरं** गुण-गुणवतोरन्तरं, **न च** नैव, **विद्यते** समस्ति, हे सुगद ! सुष्ठु गदनं-वचनं वाग्विलासो यस्य स सुगदः, तत्सम्बोधने -हे सुगद !, **त्वयैव** जिनेनैव, **भजनोर्जितः** केनचिद्रूपेण भेदः केनचिद्रूपेणाभेद इत्येवं यः स्याद्वादः, तेनोर्जितः-परिपुष्टः, **सिंहनादः** वादिगजेन्द्रवित्रासनहेतुत्वात् सिंहनादसमो वादः कृतः, त्रस्यन्ति सर्वेऽपि वादिप्रवरा भवत्कृतस्याद्वादोद्गारलक्षणसिंहनादेनेत्यर्थः ॥२६॥

अतिमनोहरस्य वीरवाक्यस्य दोषासम्पृक्तत्वमुपदर्शयति—

न जातु नरकं नरो व्रजति सागसोऽप्यन्तसो
न चापि नरकादपायमनवेत्य संवेद्यते ।

विकत्थनमभाषिणं वचनमूकमाभाषिणं
दुरुक्तमिव मन्यते न तव यो मतं मन्यते ॥२८॥

शयानमिति । अन्वयो यथाश्रुतानुसार्येव । **अतिजागरूकम्** अत्यन्त-जाग्रदवस्थम्, **शयानं** सुषुप्त्यवस्थम्, जागरण-सुषुप्तयोः परस्परविरोधेन विरुद्ध-धर्मद्वयस्यैकदैकत्र सम्भवाभावेन तथोक्तेर्दुरुक्तत्वम्, **अतिशायिनम्** अत्यन्त-सुषुप्त्यवस्थं, **जागरं** जाग्रदवस्थम्, अत्रापि दुरुक्तत्वं पूर्ववदेव, **ससंज्ञमपि** संज्ञानाम ज्ञानं वा, तेन सहितमपि **वीतसंज्ञं** संज्ञारहितम्, अत्रापि विरोधाद् दुरुक्तता, **अथ** एवम्, **मोमुहं** मूर्च्छावस्थम्, **संज्ञिनं** सचेष्टम्, मूर्च्छितो हि निश्चेष्टस्तदैव न सचेष्ट इति दुरुक्तता, **विकत्थनम्** आत्मश्लाघावाचालम्, **अभाषिणं** किञ्चिदपि वक्तुमसमर्थम्, वाचालत्वावक्तृत्वयोरेकदैकत्रासम्भवात् तद्वचनस्य दुरुक्तत्वं स्यादेव, **वचनमूकं** वचनेति विशेषणसामर्थ्यादत्यन्तमूकम्, **आभाषिणम्** अत्यन्तवचनप्रगल्भम्, अत्रापि दुरुक्तत्वं पूर्ववदेव । अपेक्षाभेदे-नैकत्रैकदा शयानत्वातिजागरूकत्वादीनां सम्भवाद् वस्तुतो नास्ति दुरुक्तता, तथापि दुरुक्तमिव इवशब्दस्यैवकारार्थकत्वाद् दुरुक्तमेव **मन्यते** जानाति, क एवं मन्यते? इत्याकाङ्क्षायामाह—हे जिन ! **यः** पुरुष एकान्तवादकदाग्रहगृहीतः, **तव** जिनस्य, **मतम्** अनन्तधर्मात्मकत्वप्ररूपकानेकान्तवादम्, **न** नैव, **मन्यते** स्वीकरोति, बाह्येन्द्रियवृत्तिनिरोधेनात्मस्वरूपं भावयन्तं योगिनं बाह्यार्थज्ञानसाम्मु-ख्याभावाच्छयानम्, आत्मस्वरूपात्यन्तप्रकाशमयज्ञानवत्त्वादतिजागरूकम् । अति-शायिनं बहिरिन्द्रियवृत्तिनिरोध-मनोवृत्तिनिरोधोभयवत्त्वेन बाह्यान्तरिकज्ञानसाम्मुख्या-भावादतिशायिनं, शुद्धात्मैकतानत्वेन परमयोगकाष्ठोपगतत्वेन जागरं, तत्तच्छरी-रावच्छिन्नात्मस्वरूपत्वेन पित्रादिसङ्केतितदेवदत्तादिसंज्ञावाच्यत्वात् ससंज्ञमपि, वस्तु-स्थित्याऽखण्डानन्दस्वरूपत्वेन पारिभाषिकसंज्ञाविकलत्वात् वीतसंज्ञम्, एवं पुत्र-कलत्र-धनादिषु ममतालक्षणमोहवत्तया मोमुहं, तत्परिपालनादिचेष्टावत्त्वेन संज्ञिनम्, आत्मश्लाघित्वेन विकत्थनं परश्लाघापराङ्मुखत्वेनाभाषिणम्, यत्र यद्वचनसमुचितं तन्न वक्तीति वचनमूकम्, परव्यामोहार्थमुच्चैः स्वरैर्यद्वा तद्वा वक्तीति आभा-षिणमित्येवं प्रकारान्तरेण वापेक्षाभेदेनानन्तधर्मात्मकवस्तुनि सर्वं वचनं सूक्तमेव न दुरुक्तमिति जैनमतं विजयत इत्यर्थः ॥२८॥

संभवेदित्यत आह—**न चेत्यादि** । **असकृत्** वारवारं, **न बध्यते** कर्मभिस्तादृग्शक्तिरात्मसात् न क्रियते इति, **न च** नैव, अर्थात् वारवारं प्रकृतिबन्धो भवतीति जिनेन, **गदिता** कथितेत्यर्थः ॥२९॥

जिनदर्शितकर्मोदयप्रकारान्दर्शयति—

इहैव परिपाकमेति विहितं परे वा भवे
भवोऽपि न भवेऽस्ति नैव न भवत्यसौ प्रागपि ।
क्वचिच्च कृतमन्यथा फलति सर्वथैवान्यथा
अवन्ध्यमिह चोदित सुकृतमष्टसङ्खयं त्वया ॥३०॥

इहैवेति । "विहितमिहैव परिपाकमेति, वा परे भवे [परिपाकमेति] भवे भवोऽपि नास्ति, असौ प्रागपि न भवति नैव, क्वचिच्चान्यथा कृतं सर्वथैवान्यथा फलति च, [पुनः] त्वया इह सुकृतमष्टसङ्ख्यमवन्ध्यमुदितम्" इत्यन्वयः । **विहितं** मिथ्यात्वादिना कृतं कर्म, **इहैव** यस्मिन् भवे कृत तस्मिन्नेव भवे, परिपाकं फलप्रदानसाम्मुख्यम्, उदयमिति यावत, **एति** प्राप्नोति, एतद्भव एव फलोपभोगो भवतीत्यर्थः, अत एवोच्यते—"अत्युग्रपुण्यपापानामिहैव फलमश्नुते ।" इति, **वा** अथवा, **परे** परस्मिन्, भवे, जन्मान्तरे परिपाकमेतीति सम्बन्धः, कुतः ' वन्धोदयमध्यवर्तिकालात्मकाबाधाकालस्य नानाविधत्वात्, यद्वा इह जन्मनि कृतामायुष्कर्म परभव एवोदयमायाति नास्मिन् भवे इति तदपेक्षया परभवे एव परिपाकमेतीति सावधारणतयापि व्याख्येयम्, नन्वेतावता कृतस्यैव कर्मण. फलमुपवर्णितम् एवं सति ससारस्य प्राथमिकोत्पत्तौ पुरा कर्मणोऽकृतत्वात् कथं तदुपभोग इत्याशङ्कायामाह—**भवे** ससारे, **भवोऽपि** प्राथमिक उत्पादोऽपि, **नास्ति** न विद्यते, तत्र हेतुः—प्रवाहतोऽनादित्वं, तदेव दर्शयति—**असौ** ससार', **प्रागपि** पूर्वकालेऽपि, **न भवति** न विद्यते इति नैव, तथा चानादिरय कथं प्रथमत एवोत्पादभाक् स्यात्, ननु यादृश कर्म कृतं तादृशमेव भुज्यते उतान्यथापि ? इत्याकाङ्क्षायामाह—**क्वचित्** क्वचित् स्थले, मनुष्यभवादावित्यर्थः, **अन्यथा कृतं** अशातादिरूपेण भोग्यतया बद्ध कर्म, **सर्वथैव**

बुद्धिविशेषगोचरम्, **घोरं** अतिकष्टसाध्यं, **तपः** मासोपवासादिकम्, **उक्तवानसि** कथितवानसि, **तद्** यच्छब्देनोद्दिष्टं तपः, **शान्तये** भवरोगोपशमनाय भवति; **इति** इत्येवंधिया, **भवार्तिपरिविक्लवैः** भवस्य–संसारस्य, संसारात्मकरोगस्य या आर्तिः–पीडा, तया परितः विक्लवैः व्याकुलीभूतान्तःकरणैर्भव्यजनैः, **सेव्यसे** स्तव–पूजादिभिस्त्वं सेवितो भवसि; **तु**शब्दो विशेषावगमनाय, तदेवाह–**भवरोगशान्तौ** संसारात्मकरोगोपशमनविधौ, **दृष्टदोषं** ज्ञातदोषं, **निदानमिव** यथा–रोगोपशमनविधौ वर्ण्यमानमपि दोषग्रस्तं निदानं निराकृतं भवति तथा, **असारभवबुद्धयः** –असारः–विविधपीडाजनकत्वेन रोगसदृशो यः, भवः–संसारः, तत्र बुद्धिः–यज्ञादिकं कृत्वा स्वर्गादिकं प्राप्स्याम इत्यादिका मतिर्येषां ते तथा, रोगसदृशभवरसिका इत्यर्थः, **परे** परे तैर्थिकाः, **त्वत्सुतैः** जिनशिष्यप्रशिष्यादिभिः, **अवधीरिताः** निराकृता भवन्ति स्म, भवरोगरसिका भवन्तः कथंकारमन्यान् तादृशरोगरहितान् कुर्युरिति पराजिता इत्यर्थः ॥३१॥

अनन्तगुणनिधानस्य जिनप्रधानस्य कतिचिदपि गुणाः सर्वथा स्तोतुमशक्याः, अथापि ममायमायासः फलेग्रहीत्यावेदनाय पृथ्वीवृत्तोद्ग्रथितां तृतीयां द्वात्रिंशिकां शिखरिणीवृत्तानुरञ्जितान्तिमपद्यहृद्या विदधाति—

अविदितगुण ! स्तोतुं कः स्यात् प्रमेयगुणानपि
त्रिभुवनगुरुः किन्त्वेवाहं तव स्तवचापलः ।
न तु गणयितुं चान्यापातं नय स्वहितैषिणां
त्वयि समुदितानन्दं चेतो मयेत्यनुवर्तितुम् ॥३२॥

अविदितेत्यादि । 'हे अविदितगुण ! तव प्रमेयगुणानपि स्तोतुं त्रिभुवनगुरुः कः स्याद्' इत्यन्वयः, हे **अविदितगुण** ! अविदिताः परिपूर्णतया यथार्थतया च न ज्ञाता गुणा यस्य सोऽविदितगुणः; तत्सम्बोधने हे अविदितगुण ! जिन !, **तव** भवतो जिनस्य, **प्रमेयगुणानपि** चारुतया गणनीयान् गुणानपि, कतिपयानपि गुणानिति भावः, आस्तामप्रमेयगुणगण इत्यपिना सूच्यते, **स्तोतुं** सर्वाङ्गतया स्तुतिविषयान् कर्तुम्, **त्रिभुवनगुरुः** भुवनत्रये गौरवशाली, **कः**

अर्थप्राचुर्यकान्ता स्तुतिरियमनघा सिद्धसेनप्रणीता
द्वात्रिंशत्पद्यमानाविभजनघटना चैकविंशत्युपेता ।
तत्रेयं या तृतीया बहुगुणकलिता श्रीजिनेन्द्रस्य तस्या
व्याख्या लावण्यसूरेर्मननपरिणता मोददा स्याद् बुधानाम् ॥१॥

इति तपोगच्छाधिपति-शासनसम्राट्-सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-श्रीविजयनेमिसूरीश्वर-पट्टालङ्कारेण व्याकरणवाचस्पति-शास्त्रविशारद-कविरत्नेति पदालङ्कृतेन श्रीविजयलावण्यसूरिणा विरचिता किरणावलीनाम्नी तृतीयद्वात्रिंशिकाव्याख्या समाप्ता ॥

भवदालम्बनमन्तरेण मम मनो न रन्तुमीहत इत्याह—

यदि वा कुशलोच्चलं मनो
यदि वा दुःखनिपातकातरम् ।
न भवन्तमतीत्य रंस्यते
गुणभक्तो हि न वञ्च्यते जनः ॥२॥

यदि वेति । "मनो यदि कुशलोच्चल वा, यदि दुःखनिपातकातरं वा मनः, भवन्तमतीत्य न रंस्यते, हि गुणभक्तो जनो न वञ्च्यते" इत्यन्वयः । **मनः** अन्तःकरण, **यदि** संभावनाया, **कुशलोच्चलं** कुशलेन—कल्याणलक्षणविषयेण, उच्चलम्—उच्चस्थान लाति—अन्तर्भूतण्यर्थत्वात् प्रापयतीति—उच्चल, कल्याणानुध्यानत उत्कृष्टस्थानस्य सुखमयस्य प्रापक, यद्वा कल्याणतत्पर, **वा** भवेद् वा, **यदि** सभावनायां, **दुःखनिपातकातरं** दुःखस्य—आध्यात्मिका-ऽऽधिभौतिका-ऽऽधिदैविकभेदेन त्रिविधस्याशातावेदनीयस्य, यो निपातः—नितरा प्राप्तिः, तेन कातरं—भयग्रस्तं वा भवेत् , उभयथाऽपि **भवन्तं** जिनम्, **अतीत्य** आलम्बनमकृत्वा, **न** नैव, **रंस्यते** रति प्राप्स्यति, **हि** यत., **गुणभक्तः** गुणाश्रयपुरुषानुरक्तः, **जनः** पुरुषः, **न वञ्च्यते** न प्रतारितो भवति, भवास्तु गुणवानिति भवदालम्बनकं मनोऽसशयं कल्याणमासादयिष्यत्येवेत्यर्थः ॥ २ ॥

अज्ञानान्धकारनिवारको भवानेवाश्रयणीय इत्याह—

कुलिशेन सहस्रलोचनः
सविता चांशुसहस्रलोचनः ।
न विदारयितुं यदीश्वरो
जगतस्तद् भवता हतं तमः ॥३॥

कुलिशेनेति । "कुलिशेन सहस्रलोचन., अंशुसहस्रलोचनः सविता च, यद् जगतस्तमो विदारयितुं न ईश्वर., तद् भवता हतम्" इत्यन्वयः । **कुलिशेन** वज्रेण, **सहस्रलोचनः** सहस्रसंख्यकं लोचनं नयनं यस्य स सहस्रलोचनः—

अभिमानग्रहिलो जनो हितकामोऽप्यत्यन्तहितावहे जिने न प्रीतिमाप्नोत्यहो मानकलेश्चेष्टितमित्याह—

हितयुक्तमनोरथोऽपि सं-
स्त्वयि न प्रीतिमुपैति यत् पुमान् ।
अतिभूमिविदारदारुणं
तदिदं मानकलेर्विजृम्भितम् ॥५॥

हितयुक्तमनोरथोऽपीति । "यत् हितयुक्तमनोरथोऽपि सन् पुमान् त्वयि प्रीतिं न उपैति, तदिद *मानकलेरतिभूमिविदारदारुणं विजृम्भितम्*" इत्यन्वयः । **यत्** यस्मात् कारणात्, **हितयुक्तमनोरथोऽपि सन्** हितेन-अभीष्टेन, विषयतया युक्तो हितयुक्तः हितयुक्तो मनोरथः—मन.कामना यस्य स हितयुक्तमनोरथः, हितविषयककामनावान्, एवम्भूतोऽपि, सन् भवन्, अपिना किं पुनस्तथाकामनाविकलः, हितविषयककामनारहितो मूढत्वादेव जिने प्रीति-विकलो भविष्यतीति न तत्र मानकलेर्विचेष्टितमित्यपिग्रहणप्रयोजनम् । **त्वयि** जिने, **प्रीति** भक्तिवहुमानाकलितं स्नेहम्, **उपैति** प्राप्नोति, **तत्** तस्मात्, **इदं** जिने भक्त्यनासादनम्, **मानकलेः** मानस्य-स्वोच्चत्वाभिमानस्य, कलि·—स्वच्छन्दं क्रीडा तस्य, **अतिभूमिविदारदारुणं** अतिशयेन भूमेर्विदार·—विदारण खनन, तद्वद् दारुण-भयङ्करम्, अतिशयेन भूखाते कृते तत्र पतन-भीत्या न कोऽपि तत्समीपमुपगच्छति तथेदम्, **विजृम्भितं** चेष्टितम्, यथा रत्नभ्रान्त्याऽतिभूमिखननं निष्फल तथा जिनप्रीतिविमुखस्य जनस्य हितयुक्तो मनोरथो निष्फल एव भवतीत्यर्थ. ॥५॥

त्वद्विद्यामधिगन्तुमशक्तस्य त्वय्येवासूया भिषग्वरे मूर्खातुरेश्वरासूयासदृशीत्याह—

भवमूलहरामशक्नुवं-
स्तव विद्यामधिगन्तुमञ्जसा ।
भवतेऽयमसूयते जनो
भिषजे मूर्ख इवेश्वरातुरः ॥६॥

वीरं जगन्नायकतया स्तौति—

वितथं कृपणः स्वगौरवाद्
वदति स्वं च न तेऽस्ति किञ्चन ।
वितथानि सहस्रशश्च ते
जगतश्चाप्रतिमोऽसि नायकः ॥८॥

वितथमिति । "कृपणः स्वगौरवाद् वितथं वदति, हे वीर ! च-पुनः, ते किञ्चन स्वं नास्ति, च-पुनः, ते सहस्रशो वितथानि, जगतश्चाप्रतिमो नायकोऽसि" इत्यन्वयः । **कृपणः** कदर्यः ।

"आत्मानं च कुटुम्बं च पुत्रान् दारांश्च पीडयन् ।
लोभाद् यः प्रचिनोत्यर्थान् स कदर्य इति स्मृतः ॥१॥"

इति वचनात् सत्यपि कुटुम्बादिप्रतिपालनप्रत्यये धने तदुपयोगक्षयसंभावनया कुटुम्बादिप्रतिपालनमकुर्वन् लोभाद् धनप्रचयतत्परः, **स्वगौरवात्** स्वस्य-धनस्य सर्वापेक्षया गुरुत्वात्, समागतमतिथ्यादिकं याचकं वा प्रति, **वितथं** किं ददामि ते, नास्ति मम सन्निधौ तव भोजनार्थं परितोषार्थं वा दातुं योग्य धनमित्येवमनृतम्, **वदति** भाषते, वीर ! **च** पुनः, **ते** तव, **किञ्चन** किमपि, **स्वं** धनं, **नास्ति** न विद्यते, राज्यं सपरिकरं परित्यज्य प्रव्रज्यां गृहीतवतो वीरस्य स्वमात्रस्यैवाभावात्, **च** पुनः, **ते** तव, **सहस्रशः** सहस्रपदमनन्तोपलक्षकम्, अनन्तानि **वितथानि** परमानन्दज्ञानात्मकात्मव्यतिरेकेण किञ्चनापि जगति न सारमिति निश्चयदृष्ट्या अनृतानि, वस्तुमात्रमनन्तधर्मात्मकमिति जिनमते यत्र सत्यत्वं तत्रासत्यत्वमपि, अपेक्षाभेदेन विधि-निषेधयोरेकत्र धर्मिण्यविरोधादित्यनन्तानि वस्तूनि किञ्चिदपेक्षया वितथानीति, हे भगवन् ! **च** पुनः, त्वं **जगतः** विश्वस्य, **अप्रतिमः** न विद्यते प्रतिमा-उपमा यस्य सोऽप्रतिमः, अनन्यसदृश., **नायकः** नयति-हिते प्रवर्तयतीति नायकः, यस्य यद्धितं तं तत्र प्रवर्त्तयति, तदीयागमलक्षणाज्ञया हितमाचरन्ति लोका इति, **असि** भवसि ॥८॥

भवस्वरूपानभिज्ञस्य त्वदाज्ञाबाह्यस्य न भयाद् विमुक्तिः, परेषामभये भयशङ्कानिमित्तं त्वद्गुणभूतिमत्सर एवेत्युपदर्शयति—

धयितुं, **वा** अथवा, **विनियोक्तुं** यत्र यदा यदुपयुक्तं तत्र तदा तस्य विनियोगं-फलविषयमषणं कर्तु **दुर्बलः** निषेध-विनियोगसामर्थ्यरहितः पुमान, **न** नैव, **अलं** समर्थः, **इयम्**-अनन्तरोपवर्णिता, **ऋषेः** सर्वज्ञस्य, **तव** जिनस्य, **च** पुनः, **नात्मवैरिणः** यः खलु विहितमकुर्वन् निषिद्धं च कुर्वन् आत्मनोऽहितमेवानवरतं करोति न तु हितं सोऽनात्मज्ञ आत्मशत्रुः एतादृशो यो न भवति स नात्मवैरी तस्य निषेधार्थक-नशब्देन समास, **लोकस्य** व्यवहारकुशलस्य जनस्य, **नियता** योग्यदेशकालावस्थाद्यनुसारिणी, **व्यवस्थितिः** = व्यवस्थेत्यर्थः । यद्वा ऋषेस्तव नियतेयं व्यवस्था, न चात्मवैरिणो लोकस्येत्यन्वयः । अत्र लोकस्य जनस्येत्यर्थ ॥१०॥

येनैव रक्तो रक्तमनाश्च यत् स्वयं करोति, तदेव तेनाचरितव्यम्, एवं सति तद्विपर्ययेण भगवति जिने नानन्दोल्लासस्तस्येत्याह—

यदि येन सुखेन रज्यते
कुरुते रक्तमनाश्च यत् स्वयम् ।
प्रविचिन्त्य जनस्तदाचरेत्
प्रतिघातेन रमेत कस्त्वयि ॥११॥

यदीति । "यदि येन सुखेन रज्यते, रक्तमनाश्च यत् स्वयं कुरुते जनः, प्रविचिन्त्य तदाचरेत्, प्रतिघातेन त्वयि को रमेत" इत्यन्वयः । यस्मै यद् रोचते तदेव स्वबुद्धिविकल्पनयाऽऽचरन्त जन प्रति भगवतो जिनस्य कष्टसाध्यतपः-स्वाध्यायादिविधायकागमस्यानर्थक्यं प्रसज्येतेति न स्वच्छन्दाचरण युक्तमित्या-वेदनाय-**यदी**ति, **येन** विषयोपभोगादिप्रभवेन, **सुखेन** आनन्देन, **रज्यते** रक्तो भवति, तदानन्दनिमग्नान्त करणस्तदेव बहुमन्यते, **च** पुनः, **रक्तमनाः** तद्विषयासक्तान्तःकरणः, **यत्** यदेव विषयोपभोगादिक, **स्वयं** आत्मनैव, न तु परप्रेरणया, **कुरुते** करोति, **प्रविचिन्त्य** प्रकर्षेण विचार्य, **जनो** लोकः, **तत्** स्वाभिलषितं स्वयमेव प्रतिभावित च, **आचरेत्** कुर्यात्, तर्हि **प्रविघातेन** स्वकीयस्वच्छन्दाचरणविनाशेन, **त्वयि** कष्टतप प्रभृतिविधायकागमोपदेष्टरि भग-वति जिने, **कः** कः पुरुषः, **रमेत** आनन्दक्रीडां विदधीत ? न कोऽपि—त्वयि रमेतेत्यर्थः ॥ ११ ॥

रेण, **वृद्धिम्**–उपचयम्, **उपैति** प्राप्नोति, **ततः** तस्मात्, **अन्यथा** उपचयकारणविपरीतप्रकारेण, **नियतः**–अवश्यम्भावी, **अस्य** वस्तुनः, **अपचयः** ह्रासः, एवं च यदभिमतं सिध्यति तदाह–**तमसा** अज्ञानलक्षणान्धकारेण, **भवः** संसारः, **परिचीयते** वृद्धिमुपैति, हे जिन ! **त्वदनाथेषु** येषां न नाथः स्वामी त्वमसि तेषु, **कथं** कस्मात्, **न दलिष्यति** भवो न स्थास्यति ? भवोपचयकारणाज्ञानविरुद्धस्य ज्ञानस्य भवापचयकारणस्याभावाद् भवोऽनुवर्त्तत एवेत्यर्थः ॥१३॥

हे वीर ! जिनमतज्ञानमन्तरेण तत्खण्डनं सम्भवतीत्यतस्तन्मतखण्डनार्थमध्येयं तद्वचनमिति बुद्ध्या ये वादिनस्त्वद्वचनं पठन्ति तेषां त्वद्वचनाविर्भूतवस्तुतत्त्वज्ञानाच्चिरसञ्चितान्यसंशयक्षयतोऽनर्थसंचयोऽपि, दूरीभवत्येवेत्याह––

यदि नाम जिगीषयापि ते
निपतेयुर्वचनेषु वादिनः ।
चिरसंगतमन्यसंशयं
क्षिणुयुर्मानमनर्थसंचयम् ॥१४॥

यदि नामेति । "यदि नाम जिगीषयाऽपि ते वचनेषु वादिनो निपतेयुः, चिरसङ्गतमन्यसंशयं मानमनर्थसंचयं च क्षिणुयु" इत्यन्वयः । यदि **नामेति** कोमलामन्त्रणे, **जिगीषयाऽपि** भवन्तं जेतुमिच्छयाऽपि; ते तव, **वचनेषु** अनेकान्तवादेषु, **वादिनः** एकान्तवादिनः, **निपतेयुः** तद्रहस्यमवबोद्धुं तदन्तः प्रविशेयुः, तर्हि **चिरसङ्गतं** बहुकालादविच्छिन्नऽन्तःकरणे सुदृढनिरूढम्, **अन्यसंशयमपि** जिनमतं यथार्थं न वेत्यादिसंशयस्तु तद्ग्रन्थावलोकनतोऽनेकान्ततत्त्वनिर्णयादेव दूरीभूतः, स्वस्वाभ्युपगतग्रन्थार्थविषयकं संशयमपि स्वमतविरुद्धैकान्तमतावलोकनसमुद्भूतं, ग्रन्थतात्पर्यानवबोधजनितं वा, तथा **मानं** मदाप्तप्रणीतवाद एव यथार्थो नान्य इत्यभिमानम्, तथा **अनर्थसंचयं** जीवहिंसादिप्रधानयज्ञादिविधायकशास्त्रप्रामाण्यग्रहप्रभवतदाचरणजनितानिष्टनिकुरम्बं च, **क्षिणुयुः** विनाशयेयुरित्यर्थः । **'चिरसंगतमप्यसंशयम्'** इति पाठे तु चिरसंगतं मानम्, अनर्थसंचयं च, असंशयं निश्चयतः क्षिणुयुः, अत्रापिशब्दः समुच्चयार्थकः ॥१४॥

वचनैरिति। "वादिनो महता भवता वचनैर्विवदन्ति, तैर्भवान् नोभयथाऽपि, वितथग्राहहतो विपरीतदर्शनो विरुध्यते" इत्यन्वयः। **वादिनः** सत्त्वा-ऽसत्त्वाद्येकान्तवादिनः, **महता** सत्त्वा-ऽसत्त्वाद्यनन्तधर्माभ्युपगन्तृत्वलक्षण-महत्त्वयोगिना, **भवता** जिनेन, **वचनैः** सत्त्वा—ऽसत्त्वाद्येकैकधर्ममात्रप्रतिपादक-वचनै', **विवदन्ति** विरुद्धवादं युक्तिरिक्तवादलक्षणविवाद वा कुर्वन्ति, युज्यते च भवता समं तेषा विवादः, यतोऽनेकान्तमभ्युपगच्छता भवताऽस्तित्वमर्थं प्रतिपादयता 'स्यादस्त्येव घटः' इत्यादि वचन प्रतिपाद्यते, वादिभिस्तु अस्तित्वमर्थं प्रतिपादयद्भि. स्यादिति वचनासमभिव्याहृतमेव 'अस्त्येव घटः' इति वचनं प्रतिपाद्यते, तत्र अस्तित्वं नास्तित्वं वैकान्तमभ्युपगच्छतां नापेक्षावचनप्रयोजनम्, अनेकान्तमभ्युपगच्छता पुनः स्यात्पदमन्तरेणास्त्येवेति नास्त्येवेति अस्तित्व-नास्तित्वोभयधर्माक्रान्ते वस्तुनि नास्तित्वप्रतिषेधोऽस्तित्वप्रतिषेधश्चाघटमानक इत्यपेक्षाबोधकस्यात्पदादिसमभिव्याहार आवश्यक इति वचनैर्विवादः सम्भवत्येव, **तैः** एकान्तवादिभि' समं, **भवान्** जिनो, **उभयथापि** वचनेनार्थतश्च, **न** नैव, वचनव्यत्यासेन विवदन्तीत्यस्यानुकर्ष., कथाया भवन्तं वादीकृत्यैकान्तवादिनः प्रतिवादिनः सम्भवन्ति, यतो भवानेवं ब्रूयात्—घटोऽस्ति नास्ति च, तत्र ये एकान्तेनास्तित्वमभ्युपगच्छन्ति, ते नास्तित्वमनभ्युपगच्छन्त 'अस्तित्ववति घटे नास्तित्व विरोधान्न सभवति' इत्येव प्रतिवदेयुः, ये एकान्तेन नास्तित्वमभ्युपगच्छन्ति, तेऽस्तित्वमनभ्युपगच्छन्तो 'नास्तित्ववति घटे विरोधादस्तित्व न सम्भवति' इत्येवं प्रतिवदेयुरित्येवमनेकान्तवादिन वादं कृत्य सर्वेऽप्येकान्तवादिनः प्रतिवादित्वमात्मन्युररीकृत्य कथा प्रवर्त्तयितुमुत्सहन्ते, एकान्तवादिनस्तु वादीकृत्य न भवान् प्रतिवादी भवितुमर्हति यतः अस्तित्वाभ्युपगन्त्रैकान्तवादी घटोऽस्त्येवेति ब्रूयात्, घटास्तित्वं च भवानभ्युपगच्छत्येवेति कथं तत्प्रतिषेधोद्यत. प्रतिवादी स्यात्? एव नास्तित्वाभ्युपगन्त्रैकान्तवादी घटो नास्त्येवेति ब्रूयात्, घटनास्तित्व भवानभ्युपगच्छत्येवेति कथं तत्प्रतिषेधोद्यत. प्रतिवादी स्यात्, किन्तु स्यात्पदासमभिव्याहृतमेकान्तवादिवचनं स्यात्पदोपादानेन सस्कुर्यात्, तदर्थोऽपि च कथञ्चिदर्थानुगमनेनोपपत्तिपद्धतिमानयेदिति, इदं तु स्यात्-**वितथग्राहहतः** वितथ—मिथ्यात्व, तदेव ग्राह-

त्वयि तत् तु यथार्थदर्शनात्
सकलं वीर ! यथार्थदर्शनम् ॥१८॥

अविकल्पसुखमिति । "अल्पमेधसः केवलं सुखेष्वविकल्पसुखमिति ब्रुवते, हे वीर ! तत् तु त्वयि यथार्थदर्शनात् सकलं यथार्थदर्शनम्" इत्यन्वयः । **अल्पमेधसः** अल्पा—अल्पविषयिणी स्वल्पकालस्थायिनी वा, मेधा—धारणावती बुद्धिर्येषां ते अल्पमेधसः, स्वल्पविषयकधारणावन्त. स्वल्पकालस्थायिधारणावन्तो वा केचित्, **केवलं** केवलज्ञान, **सुखेषु** अनेकप्रकारसुखेषु मध्ये, **अविकल्पसुखं** विकल्पज्ञानागोचरसुखम्, **इति** एवं, **ब्रुवते** कथयन्ति, हे वीर ! **तत्** तु केवलं पुनः, **त्वयि** जिने, **यथार्थदर्शनात्** अर्थानुसारिसाक्षात्कारात्, भावप्रधाननिर्देशाद् यथार्थसाक्षात्कारत्वात्. **सकलं** प्रत्यक्षं साव्यवहारिक-पारमार्थिकभेदेन द्विविधम्, तत्रेन्द्रियजन्यमनिन्द्रियजन्यमित्येवं द्विविधं सांव्यवहारिकम्, चक्षुर्घ्राण-रसन-त्वक्-श्रोत्राणि पञ्चेन्द्रियाणि, तज्जन्यमिन्द्रियजन्यम्, अनिन्द्रिय—मन·, तज्जन्य मानसप्रत्यक्षम्, पारमार्थिकमपि विकल-सकलभेदेन द्विविधम्, तत्र विकलमवधिज्ञानं मनःपर्यवज्ञानं च, सकलं सर्वपदार्थसाक्षात्कारिकेवलज्ञानम्, तच्च **यथार्थदर्शनं** प्रमात्मकमेव प्रत्यक्षम्, एतद्बलादेव यथार्थदर्शी भवानिति व्यपदिश्यते ॥१८॥

एकान्तवादिमते यो महान् स महानेव नाणुः, अणुश्च न विभुः, तव मते त्वपेक्षाभेदेन सर्वं समञ्जसमित्याह—

न महत्यणुता न चाप्यणौ
विभुता सम्भवतीह वादिनाम् ।
भवतस्तु तथा च तन्न च
प्रतिबोधावहितैर्विनिश्चितम् ॥१९॥

न महतीति । "इह वादिना महति अणुता न, अणौ विभुताऽपि न च सम्भवति, भवतस्तु प्रतिबोधावहितैः तथा च, तन्न च विनिश्चितम्" इत्यन्वयः । इह वस्तुतत्त्वविचारे, **वादिनाम्** एकान्तवादिनां, मत इति शेषः, **महति** महत्पदार्थे, **अणुता** अणुभाव., **न सम्भवति** महत्त्वा-ऽणुत्वयोर्विरो-

तस्य तस्य विधायकं शासनम्, न चारित, यच्चैकान्तवादिना तथा निर्मितं तद् वस्तुप्ररूपकत्वाभावात् शासनमेव न भवतीत्यर्थ. ॥२०॥

अज्ञानलक्षणान्धकार-केवलज्ञानयो. ससर्गाभावमामनन्त्यन्ये पण्डिताः जिने तूक्तान्धकारभाजन एव केवलज्ञानाविर्भाव इत्याश्चर्यमित्युपदर्शयति—

तमसश्च न केवलस्य च प्रतिसंसर्गमुशन्ति सूरयः ।
त्वयि सर्वकषायदोपले जिन ! कैवल्यमचिन्त्यमुद्गतम् ॥ २१ ॥

तमसश्चेति । " तमसश्च केवलस्य च प्रतिसंसर्ग सूरयो न उशन्ति, हे जिन ! सर्वकषायदोपले त्वयि अचिन्त्यं कैवल्यमुद्गतम्" इत्यन्वयः । तमसश्च अज्ञानलक्षणान्धकारस्य, केवलस्य च केवलज्ञानस्य च, प्रतिसंसर्गम् अन्योऽन्यसम्बन्धम्, सूरयः पण्डिताः, न उशन्ति न इच्छन्ति, हे जिन ! सर्वकषायदोपले सर्वे च ते कषायाश्च सर्वकषायाः काम-क्रोधाद्याः, त एव दोपा सर्वकपायदोषाः तान् लाति सङ्गृहणातीति सर्वकषायदोषलः, तस्मिन्, पूर्वावस्थाया सर्वकपायदोपमये, त्वयि जिने, अचिन्त्यं चिन्तयितुमप्यशक्यं कैवल्यं केवलज्ञानवत्त्वम् उद्गतम् आविर्भूतमित्यर्थ· ॥२१॥

कैवल्यस्याचिन्त्यत्वमुपदर्शयति—

पुरुषस्य न केवलोदयः पशवश्चाप्यनिवृत्तकेवलाः ।
न च सत्यपि केवले प्रभुस्तव चिन्त्येयमचिन्त्यवद्गतिः ॥२२॥

पुरुषस्येति । "पुरुषस्य केवलोदयो न; च—पुनः पशवोऽपि अनिवृत्तकेवला·, तव सत्यपि केवले प्रभुर्न च, इयमचिन्त्यवद् गतिश्चिन्त्या" इत्यन्वयः । पुरुषस्य कार्यमात्रं प्रयत्नऽसाध्यपौरुषसाध्यमिति पौरुषवतो जनस्य केवलोदयः केवलज्ञानाविर्भावो, न न भवति, कृतेऽपि महति प्रयत्ने घातिकर्मचतुष्टयक्षयाभावे केवलज्ञानोदयाभवात्, च पुनः, पशवोऽपि तिर्यञ्चोऽपि, अनिवृत्तकेवलाः निवृत्तं केवलज्ञानं येषा ते निवृत्तकेवलाः, न निवृत्तकेवला·, अनिवृत्तकेवलाः पशुभावावस्थायामपि कैवल्यसद्भावात्, हे जिन ! तव सत्यपि केवले विद्यमानेऽपि केवलज्ञाने, प्रभु· तत्स्वामी तद्रक्षको, न च, स्वयमेव तदवतिष्ठते, न च तस्य कदाचिदपि नाश सम्भाव्यते, यतस्तद्रक्षणार्थं कश्चित् तत्प्रभुरपेक्ष्येतापि,

प्राणिनां प्रत्यक्षसिद्धम्, **दुःखम्** अशातम्, **स्वयं कृत** यदात्मगतं तेनैवात्मना कृतं, **न च** प्रवृत्ति प्रतीष्टसाधनताज्ञानस्य कृतिसाध्यताज्ञानस्य चिकीर्षायाश्च कारणत्वेन अनिष्टे दुःखे उक्तानां त्रयाणामभावेन स्वप्रवृत्तेरनुत्पत्त्या तज्जन्यत्वासम्भवात्, **परैः** यत्र दुःखोत्पादस्तद्भिन्नैः **कृतं न च** अन्यात्मगुण प्रति उपादानत्वाद्यभावेन परेषा तत्कारणत्वासम्भवात्, प्रत्येक स्वकृतत्वस्य परकृतत्वस्य चाभावादेव **उभयजं** स्वपरोभयजन्यं, **न** नैव, स्वकृतत्व-परकृतत्व-स्वपरोभयकृतत्वानामभावे दुःखं केनापि कृतत्वाभावादकृतमेवेत्यपि न वाच्यमित्याह—**अकृतं न चेति**, यद्यकृतं तदाऽऽकाशादिवत् स्यादेव, गगनकुसुमादिवन्न स्यादेव न तु कदाचित् स्यात्, दुःखं चेदं सासारिकं कादाचित्कमिति कादाचित्कत्वान्यथानुपपत्त्या केनापि कृतमेव तन्न स्वकृतम्, भवतु कादाचित्कत्वा न्यथानुपपत्त्या येन केनापि कृतमेव तत्, विशेषतस्तस्य वक्तुमशक्यत्वेऽपि प्रतिक्षेप्तुमशक्यत्वादित्यत आह—**नियतं च** च पुनः, नियतं—देवदत्तस्य दुःख देवदत्तात्मन्येव न यज्ञदत्तात्मनि, यज्ञदत्तस्य दुःखं यज्ञदत्तात्मन्येव न देवदत्तात्मनीत्येव नियतं दुःख नानियतकारणकमित्यर्थः, ननु परमाणोरणुपरिमाणस्याकाशादेः परममह त्परिमाणस्य यथा नित्यत्वादेव नियतत्व तथा दुःखस्यापि नित्यत्वादेव नियतत्वं भविष्यतीत्यत आह—**अक्षरात्मकं न च** न क्षरति—न विनश्यतीत्यक्षर नित्य तदात्मकं दुःख न च, अनिष्टसप्रयोगेष्टवियोगादिना तदुत्पादस्य स्वसाक्षात्कारानन्तर तद्विनाशस्यानुभूयमानत्वेन तस्य नित्यत्वासम्भवात्, **इति** एवप्रकारेण, **विदुषां** पण्डितानां, हे वीर ! त्वया **उपपादित** युक्त्या प्रतिपादितमित्यर्थः ॥२४॥

तव भक्तः समदृष्टिर्भवति, जीवहिंसानिवृत्त्यर्थं सम्यगवलोक्योच्चावचमार्गगणनपुरस्सरं पदातिर्गच्छतीत्याह—

न परोऽस्ति न चापरस्त्वयि
प्रतिबुद्धप्रतिभस्य कश्चन ।
न च तावविभज्य पश्यति
प्रतिसंख्यानपदातिपूरुषः ॥२५॥

च एवं सत्यपि पुनः, **अक्रियः** स्वभावत ऊर्ध्वैकगतिस्वभावो न स्वभावतोऽधस्तिर्यगादिक्रियावान्, **कुरुते कर्म** पुमान् मनुजशरीरावच्छिन्नः स्वर्गादिफलजनकं कर्म कुरुते, किन्तु **फलैः** स्वर्गादिफलैः, **न युज्यते** न सम्बध्यते, मनुजशरीरनाशे तदवच्छिन्नस्यात्मनोऽपि नाशान्न स तै. फलैः सम्बध्यते किन्तु देवादिशरीरावच्छिन्नो अन्य एवात्मा तत्कर्मणोऽकर्तैव तत्फलैः सम्बध्यते, **च** पुनः, **फलभुक्** तत्कर्मफलोपभोक्ता देवादि., **अर्जनक्षमः** तत्कर्मोपार्जनसमर्थः, **न च** नैव, एवप्रकारेण **यैर्विदितः** यैरपेक्षाभेदावगतिनिपुणैर्ज्ञातः, हे मुने ! तैः पुरुषैः, त्वं **विदितोऽसि,** ज्ञातोऽसि त्वदुपदिष्टतत्त्वाभिज्ञ एव तथाविधतत्त्वोपदेष्टारं भवन्त ज्ञातु विदग्ध इत्यर्थः ॥२६॥

यया दिशा भगवत्सदृशो भगवानिवाभवो भवति तां दिशमुपदर्शयति—

स्वत एव भवः प्रवर्तते
स्वत एव प्रविलीयतेऽपि च ।
स्वत एव च मुच्यते भवा-
दिति पश्यंस्त्वमिवाभवो भवेत् ॥२७॥

स्वत एवेति । "भवः स्वत एव प्रवर्त्तते, च–पुन· स्वत एव प्रविलीयतेऽपि, च–पुन. स्वत एव भवान्मुच्यते, इति पश्यंस्त्वमिवाभवो भवेत्' इत्यन्वय. । **भवः** ससारः यस्माद् भवस्वाभान्यात प्रवर्त्तते सोऽपि स्वभावः स्वभावस्वभाववतोरभेदाद् भव एवेति कृत्वा, **स्वत एव** स्वस्मादेव, **प्रवर्त्तते** भवति, **च** पुन·, **स्वत एव** यस्माद् विनाशमुपयाति भवः स स्वभावोऽपि संसारादभिन्न एवेति कृत्वा, **स्वत एव** स्वस्मादेव, **प्रविलीयतेऽपि** विनश्यत्यपि, **च** पुनः, **स्वत एव** औपाधिकोऽस्य बन्धो न स्वाभाविक इत्युपाधिनिवृत्तौ स्वस्मादेवादयं पुरुषः, **भवात्** संसारात, **मुच्यते** मुक्तो भवति, **इति** एवं, **पश्यन्** जानन्, **त्वमिव** त्व जिनो यथा, **अभवः** ससाररहितस्तथा, **अभवः** भवरहितः, **भवेत्** स्यात् , इत्थं ज्ञाता केवल्येव संपद्यते, केवली च भवरहित इति युक्त एवेति ॥ २७ ॥

ज्ञान, केवलज्ञानमिति यावत्, **अर्जितं** सङ्गृहीतमुत्पादितमिति यावत्, एवं सत्यपि **हीनकलः** पूर्वकलाव्यपगमजनितन्यूनकलः, **न चासि** न च भवसि, **अधिकः** पूर्वकलाधिककलः, **नासि** न भवसि, **च** पुनः, **समतामपि** पूर्वस्वभावावस्थानान्यूनानधिकस्वभावावस्थानलक्षणसमतामपि, **अनिवृत्य** निवृत्तिमकृत्वा, **वर्त्तसे** यथावस्थितात्मस्वरूपेणावतिष्ठसे इत्यर्थः ॥२९॥

अन्यत्र दोषतयाऽवभासमानोऽपि पदार्थो भगवति त्वयि गुणरूपत्वात् तत्कथनं स्तुतिरेवेत्याह—

सति चक्षुषि तत्प्रयोजनं
न करोषीत्यभिशप्यते पुमान् ।
भवतस्त्वलमेष संस्तवो
विदुषामन्यपथान्निवृत्तये ॥३०॥

सति चक्षुषीति । 'पुमान् 'चक्षुषि सति तत्प्रयोजनं न करोषि' इत्यभिशप्यते, भवतस्तु विदुषामन्यपथान्निवृत्तये एषोऽलं संस्तव" इत्यन्वयः । **पुमान्** यः कश्चित् पुरुषः, **चक्षुषि सति** नेत्रे विद्यमाने, **तत्प्रयोजनं** चक्षुषः प्रयोजनं चाक्षुषप्रत्यक्षं, चक्षुषाऽवलोक्य कार्यकरणादिकं वा, **न करोषि** न कुरुषे, चक्षुष्मान् त्वं चक्षुषा सम्यगवलोक्य प्रवृत्त्यादिकं किमिति न करोषि, एवं सति जन्मान्ध एव त्वं युक्तः स्यात्, **इति** एव प्रकारेण, **अभिशप्यते** परकृताभिशापभाग् भवति, **भवतस्तु** हे वीर ! भवतः पुनः, **विदुषां** पण्डितानाम्, **अन्यपथात्** केवलज्ञानावलोकितमार्गव्यतिरिक्तमार्गात्, **निवृत्तये** चर्मचक्षुषा एकान्तवाद्यवलोकितमार्गतो विहिताचरण-निषिद्धानाचरणक्रियावैमुख्यसम्पत्तये, **एषः** सति चक्षुषि तत्प्रयोजनं न करोषीत्ययम्, **अलम्** अत्यर्थं, **संस्तवः** स्तुतिः ॥३०॥

जन्मजन्माभावयोर्महाभयत्वोत्तमाभयत्वे अपि वीरोपासनाजन्यसंस्कारसहितचक्षुष एव सम्यग् विमृशन्ति, तदुपासनामन्तरेण तयोर्दर्शनासम्भवादित्याह—

एतावता वैतालीयच्छन्दसा भगवतः स्तवनं विधायाथोपजातिवृत्तेन तत्समाप्तिपद्यं निगमयति—

स्तवमहमभिधातुमीश्वरः
क इव यथा तव वक्तुमीश्वरः ।
त्वयि तु भवसहस्रदुर्लभे
परिचय एव यथा तथास्तु नः ॥३२॥ [उपजाति.]

स्तवमहमिति । "वक्तुमीश्वरः क इव यथा तव स्तवमभिधातुमीश्वरोऽहम्, भवसहस्रदुर्लभे त्वयि तु यथा तथा नः परिचय एवास्तु" इत्यन्वयः । **वक्तुं** ज्ञातमर्थं सम्यगभिधातुम्, **ईश्वरः** समर्थः, **क इव** विशिष्य निर्देष्टुमशक्यः पुरुष इव, **यथा** येन प्रकारेण, हे वीर ! तव **स्तवं** स्तोत्रम्, **ईश्वरः** समर्थः, **अहं** सिद्धसेनदिवाकरः स्याम्, वक्ता कोऽपि पुरुषो भवत्स्तुतिकरणसमर्थो यदि स्यात् तदा तदुपमानेनाहमपि त्वत्स्तुतिकरणप्रत्यल इति सम्भाव्येत, न चैवम्, यदि त्वया मत्स्तुतिकरणमसंभावितमेव तर्हि किं प्रयोजनं—कोऽयमुद्यमस्तवेति भगवता पृष्ट इवाह- **भवसहस्रदुर्लभे** जन्मसहस्रेणाप्यवाप्तुमशक्ये, **त्वयि** जिने, **तु** पुनः, **यथा तथा** येन केनचित् प्रकारेण, **नः** अस्माक, **परिचय एव** उत्तरोत्तर त्वद्विषयकस्मृतिदार्ढ्यार्थं स्वरूपपरिज्ञानमेव, **अस्तु** भवत्वित्यर्थः । इह प्रथमतृतीयपादयोः "नौ रलगा भद्रिका" इति भद्रिकालक्षणलक्षितत्वात्, द्वितीय-चतुर्थपादयोः 'न्जौ ज्रौ मालती" इति मालतीलक्षणलक्षितत्वात् साङ्कर्येत उपजातिवृत्तमिति ॥३२॥

धीव्यापारविशेषभव्यमननाऽनेकान्ततत्त्वोद्गता
श्रीवीरस्तुतिभावमात्रतनुता श्रीसिद्धसेनोद्भवा ।
तुर्याऽमेयप्रमेयसारकलिता द्वात्रिंशिकेयं स्तुति.
व्याख्याता वितनोतु मोदमखिलं लावण्यबुद्ध्यांऽशतः ॥१॥

इति तपोगच्छाधिपति-शासनसम्राट्-सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-श्रीविजयनेमिसूरीश्वर-
पट्टालङ्कारेण व्याकरणवाचस्पति-शास्त्रविशारद-कविरत्नेति पदालङ्कृतेन
श्रीविजयलावण्यसूरिणा विरचिता किरणावलीनाम्नी
चतुर्थद्वात्रिंशिकाव्याख्या समाप्ता ॥

सज्जनैः, **गतं** गमनकर्मभूतं, **मार्ग** पन्थान मोक्षसाधनं भगवतः स्तुतिकरणादिकम्, अनुप्रपत्स्ये अनुसरामीत्यर्थः । इदमुपजातिवृत्त, तल्लक्षणं प्रागुक्तम्, एवमग्रेऽपि ॥ १ ॥

मत्कर्तृका भवतः स्तुतिर्यथा तथा भवतु, भवद्भक्त्याऽन्यानपेक्षोऽहं भवन्तं प्रति स्वदोषान् क्षमयितुमवकाशमासादयाम्येवेत्याह—

जाने यथाऽस्मद्विधविप्रलापः
क्षेपः स्तवो वेति विचारणीयम् ।
भक्त्या स्वतन्त्रस्तु तथापि विद्वन् !
क्षमावकाशानुपपादयिष्ये ॥२॥

जाने इति । "यथाऽस्मद्विधविप्रलापः क्षेप· स्तवो वेति विचारणीयम्, हे विद्वन्! तथापि भक्त्या स्वतन्त्रस्तु क्षमावकाशानुपपादयिष्ये इति जाने" इत्यन्वयः । **यथा** येन प्रकारेण, इय मत्कर्तृका भवत· स्तुति·, **अस्मद्विधविप्रलापः** अस्मद्विधानाम्—अस्मादृशानां विप्रलापः–यद्वा तद्वा भाषणं, **क्षेपः** अनादरः, **स्तवः** गुणप्रकथन वा भवेदिति, **विचारणीयं** सम्यक् पर्यालोचनीयम्, हे **विद्वन्!** सर्वान्तर्यामिन्! **तथापि** एवं सत्यपि, **भक्त्या** त्वयि भक्तिभरेण, **स्वतन्त्रस्तु** अन्याप्रेरित एव त्वा स्तोतु प्रवृत्तोऽहं, पुन· **क्षमावकाशान्** यथायथोपवर्णनासामर्थ्यप्रयुक्तन्यूनोक्त्यधिकोक्त्यनवसरोक्त्यादिवक्तृदोषक्षमावकाशान्, **उपपादयिष्ये** उपपादन करिष्ये, अय दोष एव भवता क्षन्तव्य·, प्रमादादन्यगतचित्तत्वादज्ञानाद् वाऽयमापतितो दोष इत्थं क्षन्तव्य इत्येवमर्थादिव समर्थयिष्ये, गुरूणा समीपे बालानां दोषसमष्टिस्तद्भक्तिप्रभावप्रीत्यैव विनिवर्त्तत इत्यतो यथातथेयं स्तुतिरनिवृत्तप्रसरैवेत्यभिसन्धिः ॥ २ ॥

भगवतो गुणानां वर्णन न सभवतीत्युपदर्शयितु यस्य यदुपमया वर्णनं सुसङ्गत तदुपदर्शयति—

गम्भीरमम्भोनिधिनाऽचलैः स्थितं
शरदिवा निर्मलमिष्टमिन्दुना ।

उपमायाः–सादृश्यस्य अभिधानं–कथनं, स्यात् , यो येन समः स तेनोपमीयते, यथा मुख चन्द्रेण सममिति मुखं चन्द्रसदृशमित्येवमुपमीयते, अस्मिन् ससारे मया सह समानगुणः कश्चिद् भविष्यति तेन सह ममोपमाऽभिधान भवतु–महावीर एतद्‌वदवभासत इति भगवता पृष्ट इव स्तुतिकार आह–**ते** तव जिनस्य, न्यूनोऽपि यज्जातीयगुणवान् जिनः तज्जातीय एव तदपेक्षया कतिपयांशेन न्यूनो यो गुणस्तद्वानपि, **नास्ति** न विद्यते, **कुतः** कस्मात्, **समानः** अन्यूनानतिरिक्तधर्मवान् तथा च केनापि गुणेन केनापि सममुपमानोपमेयभावेन स्तुतिर्भवतो न शक्यते इत्यर्थः ॥४.।

पितुरुपनीता वसुधां गृहीत्वा परित्यक्तवतो महावीरस्य निर्ममत्वं समाश्रित्य स्तुतिं विदधाति—

अमोह ! यत्तां वसुधावधूं य-
न्मानानुरोधेन पितुश्चकर्ष ।
ज्ञानत्रयोन्मीलितसत्पथोऽपि
तत्कारणं कोऽच्युत ! मन्तुमीशः ? ॥५॥

अमोहेति । "हे अमोह ! ज्ञानत्रयोन्मीलितसत्पथोऽपि पितुर्यन्मानानुरोधेन यत्तां वसुधावधू चकर्ष, हे अच्युत ! तत्कारण मन्तुं क ईश ' इत्यन्वयः । हे **अमोह !** न विद्यते मोह मूर्च्छा यस्य सोऽमोहः, तत्सम्बुद्धौ–हे अमोह ! मोहरहित ! **ज्ञानत्रयोन्मीलितसत्पथोऽपि** ज्ञानत्रयेण–मति-श्रुता-ऽवधिलक्षणज्ञानत्रयेण, उन्मीलितः– प्रकटित , सत्पथ –सम्यग्ज्ञान दर्शन-चरित्रलक्षणसमीचीनमोक्षमार्गो यस्य स ज्ञानत्रयोन्मीलितसत्पथ , एवभूतोऽपि सन्, **पितुः** जनकस्य सिद्धार्थनृपस्य, **यन्मानानुरोधेन** यादृशाज्ञापरिपालनादिमानरक्षणसाम्मुख्येन, **यत्ताम्** आयत्ताम्, अधीनामिति यावत् , **वसुधावधूं** वसुधैव वधू–स्त्री –वसुधावधू ता, **चकर्ष** आकृष्टवान्, हे **अच्युत !** अविनाशिपरमात्मन् ! **तत्कारणं** तन्माननिमित्तं, **मन्तुं** मननविषयीकर्तुम्, **ईशः** समर्थः, **कः** [2] न कोऽपीत्यर्थः, मोहरहितोऽपि पितुर्मानरक्षार्थं तत्प्रदत्ता भूमिं कञ्चित् काल गृहीत्वा परित्यज्य तां प्रव्रज्या गृहीतवानसीत्येवं व्यतिकरे मननसमर्थो न कोऽपीत्यर्थः ॥५॥